होशंगाबाद विज्ञान

अंक 20

शिक्षा नीति के संदर्भ में :
- भाषा-नीति का सवाल
- माध्यमिक शिक्षा और रोजगार
- रोजगार ग्यारंटी अनिवार्य है
- त्रिभाषा सूत्र
- उच्च शिक्षा की दिशा

गिजुभाई प्रसंग

प्राइवेट कॉलेज का घोषणा पत्र

सवालीराम क्लब

विज्ञान एवं बौद्धिक विकास

राष्ट्र नहीं होती भुक्खड़ जनता
पर्यावरण पर एक विचारोत्तेजक कविता

डारविन का विकासवाद

स्कूली शिक्षा की सार्थकता

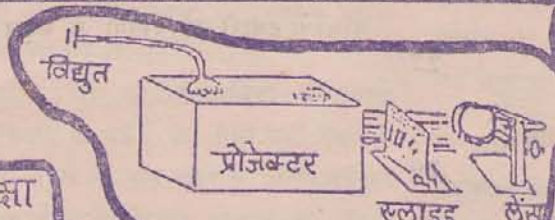

कहानी वाटरलेंस प्रोजेक्टर बनाने की

1 2 3 4 5
6 7 8 9 0

भारतीय अंक पद्धति का आविष्कार

जिले का मॉडल स्कूल

इस अंक में — मई, 86

संवाद : जिले का माडल स्कूल	1
कविता : राष्ट्र नहीं होती भुक्खड़ जनता	2
गोष्ठी : नई शिक्षा नीति	5
भाषा : विज्ञान एवं बौद्धिक विकास	6
मवालीराम क्लब	8
रपट : गिजुभाई/बाल मेले	10
गणित : अंक-पद्धति	13
क्या आप गणित से डरते हैं ?	17
नई शिक्षा नीति : शिविरा में	19
कहानी : नियति	21
कहानी वाटरलेस प्रोजेक्टर की	22
स्कूली शिक्षा की सार्थकता	24
विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम	25
किट का अभाव, परीक्षा पर प्रभाव	26
व्यंग्य : प्राइवेट कालेज का घोषणा–पत्र	27
अनौपचारिक शिक्षा : हम साक्षर क्यों बनें	29
मात्र पढ़ाना	30
डारविन का विकासवाद	31
लघु कथाएं	34
पौधों की शुरुआत कैसे हुई ?	36
जनविज्ञान यात्रा	36

नई दुनिया के ख्वाब हैं हम

दुनिया के हर सवाल के हम ही जवाब हैं,
आँखों में हमारी नई दुनिया के ख्वाब हैं।

इन बाजुओं ने साथी, ये दुनिया बनाई है,
काटा है जंगलों को और बस्ती बसाई है,
जीवन खटाके खेतों में फसलें उगाई हैं
सड़कें निकाली हैं और अटारी उठाई हैं
यह बाँध बनाए हैं, फैक्टरी बनाई है

हम बेमिसाल हैं, हम लाजवाब हैं
आँखों में हमारी नई दुनिया के ख्वाब हैं।

अब फिर नया संसार बनाना है हमें ही
नामो निशां सितम का मिटाना है हमें ही
इंसा को फिर से इंसा बनाना है हमें ही
अब आग में से फूल खिलाना है हमें ही
फिर से अमन का गीत सुनाना है हमें ही

हम इस ज़हाँ के आफताब-ए-इंकलाब हैं
आँखों में हमारी नई दुनिया के ख्वाब हैं।

हकों के लिए जंग छेड़ दो ए दोस्तों
ये जंग बनके फूल उगेगा ए दोस्तों
बच्चों की हँसी को यह खिलाएगा दोस्तों
माँओं की खुशी को यह बुलाएगा दोस्तों
प्यारे वतन को स्वर्ग बनाएगा दोस्तों

हम आने वाले कल की इक खुली किताब हैं
आँखों में हमारी नई दुनिया के ख्वाब हैं।

✱□✱

'होशंगाबाद विज्ञान' और 'चकमक' आपकी अपनी पत्रिकाएं हैं।

इनमें अपना रचनात्मक सहयोग दीजिए। चकमक के लिए खुद लिखें और अपने विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करें।

आपकी रचनाओं और प्रतिक्रियाओं का स्वागत है।

संवाद

जिले का माडल स्कूल

—कृष्ण कुमार

नई शिक्षा नीति पर बहस के साथ-साथ उसकी कुछ बातों पर अमल भी शुरू हो चुका है। देश के हर जिले में एक मॉडल स्कूल खोलने की जो बात प्रधानमंत्री इस साल के शुरू से कहते रहे हैं, उसके लिए सातवीं योजना के प्रस्ताव पत्र में धनराशि भी तय कर दी गई है।

यही नहीं; कई जिलों में मॉडल स्कूल के लिए जमीन प्राप्त करने की कार्रवाई भी प्रारंभ हो चुकी है। इस बात की काफी संभावना है कि अगले सत्र के आरंभ तक देश के लगभग एक-तिहाई जिलों में मॉडल स्कूल काम करने लगें। प्रश्न उठता है कि मॉडल स्कूल का "काम" ठीक-ठाक क्या होगा ?

एक स्थिति तो यह हो सकती है कि जिले का मॉडल स्कूल एक अच्छा स्कूल भर हो। "अच्छे" स्कूल से आशय आजकल प्राय: ऐसे स्कूल से होता है, जो नियमित रूप से खुलता हो, जिसमें बच्चों के बैठने की पर्याप्त व्यवस्था हो, उनकी पढ़ाई-लिखाई के लिए उपयुक्त वातावरण हो और परीक्षा में बहुत-से बच्चे प्रथम श्रेणी में पास होते हों। ये अपेक्षाएँ तो असल में हमें किसी भी स्कूल से होनी चाहिए, पर आज की हालत ऐसी है कि इन सामान्य बुनियादी अपेक्षाओं को पूरा करने वाला स्कूल 'अच्छा' कहलाता है। इस किस्म का सरकारी स्कूल तो मुश्किल से ही देखने को मिलता है। ज्यादातर सरकारी स्कूल शिक्षण सामग्री की व्यवस्था और अध्यापकों के उत्साह की दृष्टि से काफी गरीब है। पढ़े-लिखे मध्य-मवर्गीय माता-पिताओं को सरकारी स्कूलों पर कोई भरोसा नहीं रह गया है और गरीब माता-पिता भी केवल लाचारी में अपने बच्चे वहाँ भेजते हैं। इस परिस्थिति में सरकारी क्षेत्र का मॉडल स्कूल अवश्य ही लोगों का, विशेषत: मध्यमवर्गीय लोगों का ध्यान आकर्षित करेगा।

मॉडल स्कूलों की योजना के पीछे सरकार के दो उद्देश्य है। एक उद्देश्य यह है कि मॉडल स्कूल जिले के अन्य स्कूलों के लिए एक मिसाल बने। स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक इस तरह की बात भारतीय शिक्षा के इतिहास में अनेक बार की जा चुकी है। केन्द्रीय विद्यालय बहुउद्देश्यीय विद्यालय, केंद्रीय विश्वविद्यालय, आई. आई. टी. और इसी तरह की अन्य विशिष्ट संस्थाओं का औचित्य हमेशा यह कह कर सिद्ध किया गया है कि वे बाकी संस्थानों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनेगीं। इस उद्देश्य के तहत विशिष्ट बना-कर खोली गई संस्थाओं को दूसरों से ज्यादा पैसा दिया गया, उनमें सेवा की शर्तें बेहतर रखी गई और उनके विद्यार्थियों को ज्यादा सुविधाएं दी गई। पर ऐसा कहीं देखने में नहीं आया कि लाड़-प्यार से पोसी गई इन संस्थाओं ने बाकी आम संस्थाओं का किसी भी मामले में नेतृत्व किया हो। उलटे हुआ यह कि विशेष सुविधाएं पाने वाली संस्थाएं भी अपने अभिजात्य से घिर गईं। उनके अध्यापकों तथा छात्रों में अपनी विशिष्टता का घमंड पैदा हो गया और उनमें अपने बच्चों को प्रवेश दिलवाने के लिए समाज में अंधाधुंध होड़ शुरू हो गई। यह मानने का फिलहाल कोई आधार नहीं है कि मॉडल स्कूलों की योजना का भी ऐसा ही हश्र नहीं होगा।

सरकारी स्कूलों में भारी उदासी और निराशा का वातावरण है अपने पड़ौस में एक सुविधा संपन्न स्कूल देखकर उनकी निराशा और बढ़ सकती है। मॉडल स्कूल से प्रेरणा वे तभी ग्रहण कर सकते हैं, जब स्वयं उनकी परिस्थितियों में सुधार किया जाए। सुधार के मानी ये हैं कि उन्हें छात्रों की संख्या के हिसाब से इमारत व जगह दी जाए, पानी, पेशाबघर, पुस्तकालय और खेल-सामग्री की व्यवस्था की जाए, और स्थानीय नेताओं व अफसरों द्वारा किए जाने वाले शोषण के खिलाफ अध्यापकों को कुछ अधिकार दिए जाएँ। इतना सब होने के बाद ही यह आशा की जाती है कि मॉडल स्कूल आम स्कूलों पर कोई प्रभाव डालें। उस स्थिति में सरकार को यह सोचना होगा कि मॉडल स्कूल सिर्फ सामान्य दिनचर्या के मामले में दूसरों के लिए अनुकरणीय बनें या शिक्षण के नए प्रयोग पाठ्यक्रम के क्षेत्र में नई पहल भी करें।

मॉडल स्कूलों की योजना का दूसरा उद्देश्य प्रतिभाशाली बच्चों को ढूंढ़कर उनके विकास की समुचित व्यवस्था करना है। कल्पना यह की गई है कि मॉडल स्कूल में प्रवेश के लिए एक निष्पक्ष परीक्षा होगी, जो अमीर-गरीब, ऊँच-नीच के पारंपरिक विभाजन की उपेक्षा करके हर वर्ग और समुदाय के प्रतिभाशाली बच्चों को सामने लाएगी। इस तरह देश की प्रतिभा को शुरू

(शेष पृष्ठ 4 पर)

कविताएं

श्याम बहादुर नम्र की एक विचारोत्तेजक कविता

राष्ट्र नहीं होती भुक्खड़ जनता

नष्ट हो जाँय जंगल,
आम में न आये बौर;
बाग में न चहकें चिड़ियाँ,
कोयल को न मिले कूकने का ठौर।

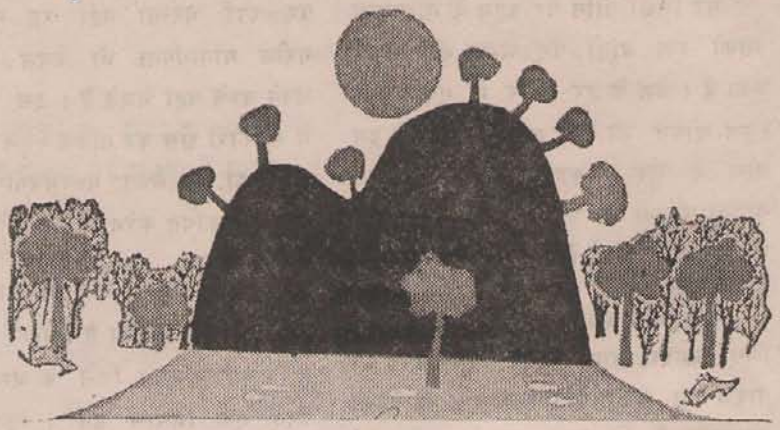

मर जाँय कामधेनु या नन्दी विषैला पानी पीकर,
खत्म हो जाँय मछलियाँ, क्या करेंगी जीकर ?
कुछ किसान या मछुवारे ही तो होंगे बेरोजगार,
जहरीले धुएँ से कुछ लाख लोग ही तो होंगे बीमार,
या छोड़ देंगे दुनियाँ, कुछ हजार;

क्या फर्क पड़ता है ?
राष्ट्र हित सर्वोपरि है,
उसके लिए इतना तो चलता है।

इसलिए पर्यावरण की बात मत उठाओ,
विकास की दौड़ से राष्ट्र को पीछे मत लौटाओ,
राष्ट्र नहीं होता पर्यावरण, राष्ट्र नहीं होता जंगल;
राष्ट्र नहीं होती मछली, राष्ट्र नहीं होती कोयल।
राष्ट्र नहीं होती नदी, राष्ट्र नहीं होती हवा,
राष्ट्र नहीं होते पशु, राष्ट्र नहीं होती फसल।

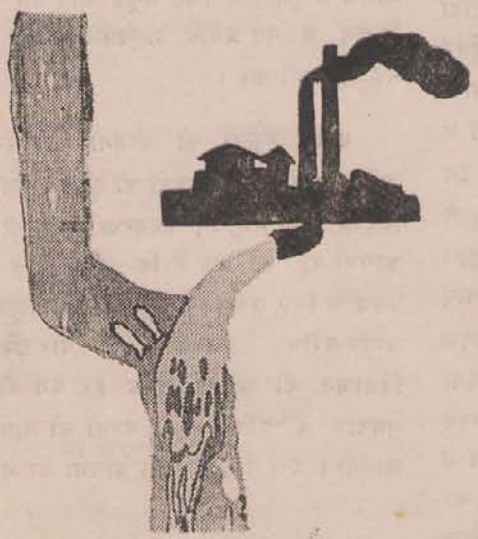

और जनता ?
वह तो, राष्ट्र पर कुर्बान होने के लिए होती है।
इसलिए—
मर जाँय कुछ हजार या लाख
जहरीले धुएँ या पानी से,
तो उन्हें शहीद का दर्जा दिया जाता है,
उनके शव के साथ उनके मरने का समाचार
भी दफना या जला दिया जाता है।

तुम पूछते हो कि राष्ट्र कहते किसे हैं ?
ऐसे सवाल राष्ट्र-द्रोही पूछते हैं।
तुम्हें मालूम होना चाहिए कि—
बंदूकें गुलाम हैं जिनकी,
सत्ता पर लगाम हैं जिनकी,
जिनका नियन्त्रण है पूँजी पर,
जो बड़े-बड़े उद्योग चलाते हैं
फैक्टरी के कचरे से नदियाँ सड़ाते हैं,
साफ हवा में जहर मिलाते हैं।
छीन लिया है, जिन्होंने सूरज को,
और छिपा दिया है
धुएँ के पहाड़ के पीछे,
सुबह होने की खबर मिल सके,
इसलिए मिल का भोंपू बजाते हैं।

छलनी कर दिया है धरती का कलेजा
अंधाधुन्ध ऊर्जा के दोहन से,
राष्ट्र यानी खुद के लिए
हर साल अरबों मुनाफा कमाते हैं।

अरे, राष्ट्र वो हैं, जिनके हाथ में है संपन्नता,
राष्ट्र नहीं होती भुक्खड़ जनता।

और जनता अब कमजोर हो गयी है,
बीमार पड़ने लगी है,
गैस के धुएँ से मरने लगी है।
वह मुआवजा भी मांगती है,
जरूरत से ज्यादा सीना तानती है।

इसलिए वे राष्ट्र के विकास के लिए
मशीन चाहते हैं,
जनता से आदमी नहीं; मशीन होने का यकीन चाहते हैं।
क्योंकि मशीनें बीमार नहीं पड़तीं,
मशीनें गैस के धुएँ से नहीं मरतीं;
मशीनें हड़ताल नहीं करतीं,
मशीनें सवाल नहीं करतीं;
मशीनें मुआवजा नहीं मांगतीं,
मशीनें सीना नहीं तानतीं।
मशीनें आदमी की तरह नहीं सोचतीं,
मशीनें मुक्ति का मार्ग नहीं खोजतीं

आदमी कुछ ज्यादा सोचने लगा है,
इसलिए राष्ट्र को खतरा होने लगा है।

इसलिए देश में सिर्फ वो रहेंगे और मशीनें रहेंगी,
जनता जब तक आदमी से मशीन न बन जाय,
संगीनें रहेंगी।

आदमी तो उन्होंने बहुत पहले खत्म कर दिया होता,
अगर उन्हें बाजार का ख्याल न रहा होता।
क्योंकि, मशीनें सिर्फ ऊर्जा खाती हैं;
वो बाजार में माल खरीदने कहाँ जाती हैं ?
उनके माल के लिए बाजार जरूरी है,
और आदमी का जिन्दा रहना
उनकी मजबूरी है।

इसलिए वे आदमी को मरने नहीं देंगे,
उसे मशीन बनायेंगे,
कम्प्यूटर के ताल पर उसको नचायेंगे।
मुहल्ले-मुहल्ले गाँव-गाँव टी. वी. पहुंचाएंगे।

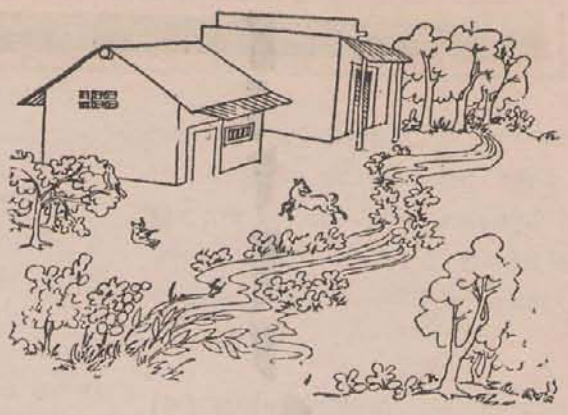

जैसा वे चाहते हैं,
वैसी बात रोज-रोज
ठोंक-ठोंक सबके दिमाग में घुसायेंगे।

वो ऐसा दिखायेंगे विज्ञान का कमाल,
कि लोग भूल जायेंगे भूख का सवाल
उनके लिए जरुरी है कि आदमी एकसी हरकत करे
पर एक न रहें,
वे जिधर चाहें, वह उधर बहें
राष्ट्रीय एकता के नाम पर आपस में दंगा करे,
देश की इज्जत के लिए एक दूसरे को नंगा करे
वे जनता को सम्प्रदाय व जाति में बांटें,
और लोग उनकी सांप्रदायिक सदभावना के तलुवे चाटें।

लेकिन हम उनका सपना पूरा नहीं होने देंगे,
जनता के भीतर के आदमी को सोने नही देंगे।
हमेशा जागरूक रहेंगे;
जाति व सम्प्रदाय में नहीं बटेंगे।

फिर मछुआरे हों या किसान, मजदूर हों या दस्तकार,
हम सब करेंगे उस नयी सुबह का इन्तजार;
इन्तजार क्यों ? हम उसे जल्द लायेंगे,
जिसमें एक जुट होकर समता के गीत गायेंगे।

और वो अपने ही दुश्चक्र में फँस के मरेंगे,
विषमता के दल-दल में धँस के मरेंगे।
क्योंकि मशीनें उनके मुनाफे के लिए नहीं,
सबकी खुशहाली के लिये काम करेंगी,
थकने पर वे भी आराम करेंगी।
फिर आदमी भी काम से नहीं थकेगा,
मशीनों के साथ आराम से चलेगा।

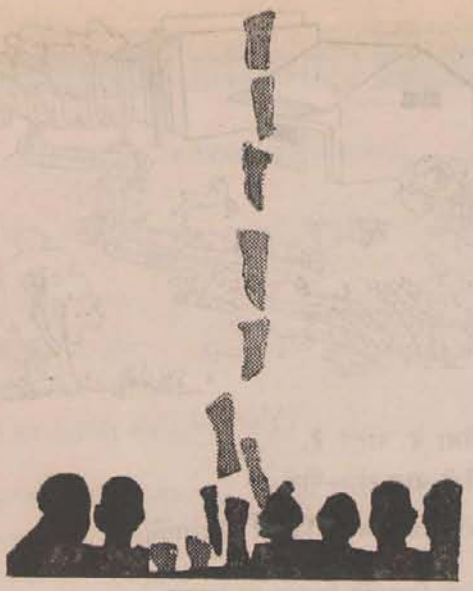

और फिर से हरियाली के गीतों से गूंजेगा जंगल,
खेत-खेत लहरायेगी अन्नपूर्णा फसल;

नहीं मरेंगी मछलियाँ, लहरों से खेलेंगी,
फिर कूकेगी कोयल, फिर चिड़ियाँ चहकेंगी।

लोग दुनियाँ नहीं छोड़ेंगे गैस के असर से,
कामधेनु होगी घर-घर, नन्दी भी मरेगा नहीं
पानी के जहर से।

भर जायेंगे कुदरत के सारे घाव,
नदियों में मवाद नहीं, अमृत बहेगा;
टूट कर बिखर जायेंगे धुएँ के पहाड़
खुली सांस हम भी लेंगे, सूरज भी लेगा;
हवा का हर झोंका ताजगी को स्वर देगा।

न रहेगा प्रदूषण, न शोषण, न दमन;
चारों और होगा बस चैन और अमन।

और टूट जायेंगी भौगोलिक सीमाएँ,
खुल जायेंगी सभी दिशायें;
तब राष्ट्र घुटन की कैद नहीं; पूरा संसार होगा;
विश्व-बधुत्व का सपना साकार होगा।

मॉडल स्कूल (शेष पृष्ठ 1 का)

से ही विकास के विशेष अवसर मिल सकेंगे। ऊपर से देखने पर यह बात बुरी नहीं लगती, पर इसमें छिपी हुई आशंकाएँ पहचानना जरूरी है। पहले तो आज के वातावरण में यह मान लेना काफी कठिन है कि स्कूल-स्तर पर कोई स्थानीय परीक्षा निष्पक्ष हो सकती है। पर मान लीजिए कि ऐसी परीक्षा की व्यवस्था कर दी जाए, तो भी यह प्रश्न शेष रह जाता है कि छोटी उम्र में "प्रतिभाशाली" और "सामान्य" बच्चों के बीच फर्क करना और उनकी शिक्षा की अलग-अलग व्यवस्था करना कहाँ तक उचित है।

आज तक कोई व्यक्ति या समाज यह नहीं जान पाया है कि मनुष्य की प्रतिभा ठीक-ठीक क्या चीज है, उसके कितने रूप हो सकते है और उन्हें कब व कैसे पहचाना जा सकता है। जो लोग प्रतिभा की पहचान छुटपन में ही कर लेना उचित समझते हैं, वे प्राय: प्रतिभा की एक रूढ़, सीमित धारणा लेकर चलते हैं। आजकल बड़े शहरों के प्राइवेट स्कूलों में तीन-चार साल के बच्चों की भरती के लिए प्रचलित "परीक्षा" और उनके "इंटरव्यू" की कसौटी "प्रतिभा" या "योग्यता" की एक अत्यंत रूढ़ धारणा को ही लेकर चलती है। धनी माता-पिता इसकी धारणा के अनुसार अपने शिशुओं को प्रशिक्षित करते हैं और इस तरह "योग्यता" की पहचान के लिए आयोजित परीक्षा में वे बहुतायात से उत्तीर्ण हो जाते हैं। इस बात की पर्याप्त आशंका है कि मॉडल स्कूलों के लिए आयोजित परीक्षा अंतत: संपन्न और निर्धन बच्चों के बीच अंतर करने वाली परीक्षा बन जाएगी और संपन्न बच्चों का साथ देगी।

कई और देशों में भी प्रतिभा को बाल्य-काल में पहचान लेने की कोशिशें की गईं और वे हानिप्रद सिद्ध हुई। हानिप्रद वे इस अर्थ में सिद्ध हुईं कि "प्रतिभाशाली" माने गए बच्चों को विशेष सुविधाएँ देने पर उनका संपर्क "सामान्य" माने गए बहुसंख्यक बच्चों से कट गया। बच्चे सिर्फ अध्यापकों, किताबों और शिक्षण सामग्री से ही नहीं सीखते, बल्कि एक-दूसरे से भी सीखते हैं। अलग-अलग आर्थिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक परिवेश से आने वाले बच्चों का हिलमिलकर रहना, उनमें भिन्न-भिन्न शैक्षिक संभावनाएँ उत्पन्न करता है। हर बच्चे में किसी न किसी तरह की प्रतिभा छिपी होती हैं। हम उसे पहचानते हैं या नहीं पहचानते है, यह हमारे पूर्वग्रहों पर निर्भर है। प्रतिभा का विकास और उसकी अभिव्यक्ति की रफ्तार भी हर बच्चे में अलग होती है। हर बच्चे में निहित प्रतिभा को विकास का अवसर देने के लिए ही विश्व के अनेक दार्शनिकों और महान शिक्षकों ने "कॉमन" स्कूल की कल्पना की थी, जिसमें हर वर्ग, जाति और समुदाय के बच्चों के एक साथ बैठकर पढ़ने की व्यवस्था हो-भले वे होशियार दिखते हों या बुद्धू। हमारे देश में गिजुभाई बधेका, महात्मा गांधी और जे. पी. नाईक जैसे लोगों ने 'कॉमन' स्कूल की आवश्यकता पर जोर दिया था। लगता है, अब हम ऐसे स्कूल की कल्पना से दूर होते जा रहे हैं।

(नईदुनिया से साभार)

गोष्ठी

सन्दर्भ : नई शिक्षा नीति

नई शिक्षा नीति के अन्तर्गत 15–17 नवम्बर 1985 को 'एकलव्य' द्वारा विज्ञान शिक्षण पर राष्ट्रीय सेमीनार का आयोजन किया गया था। इस सेमीनार में देश के विश्वविद्यालयों, वैज्ञानिक संस्थाओं, सामाजिक क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संस्थाओं के सदस्यों ने भाग लिया।

इस सेमीनार में की गई सिफारिशों का सारांश और उन पर होने वाले खर्च का अनुमान आप अंक 19 में पढ़ चुके हैं। प्रस्तुत है सेमीनार के प्रतिवेदन के कुछ अंश।

नई शिक्षा नीति पर बहस के सन्दर्भ में सवाल स्वाभाविक रूप से उठता है कि कहने के लिए "नया" क्या है ? जबकि मुदलियार, राधाकृष्णन, कोठारी और राष्ट्रीय शिक्षक आयोग तथा अनेकों प्रतिवेदनों और सर्वेक्षणों में बहुत कुछ कहा गया है। दरअसल प्रमुख सवाल है कि इन आयोगों और सर्वेक्षणों में कही गई बातों को अभी तक लागू क्यों नहीं किया जा सका ? जब तक इन कारणों की जांच पड़ताल ठीक से नहीं होती तब तक कुछ भी नया कहने या सुझाने का क्या मतलब है ? इस बात का क्या भरोसा कि नई शिक्षा नीति में जो कुछ कहा जायेगा उसे लागू कर ही लिया जायेगा ?

शैक्षिक नीतियों को लागू करने की प्रमुख समस्या, शायद राष्ट्र के लिए निर्धारित विकास की समझ और शैक्षिक नीतियों में विरोधाभास की है। यदि यह बात है तो फिर सवाल और गहरे हो जाते हैं। और फिर केवल शिक्षा पर बहस करके उन्हें नहीं सुलझाया जा सकता। तब तो विकास की समझ ही बहस के दायरे में आ जाती है। हो सकता है और भी कई कारण हों। बहरहाल, हम उम्मीद करते हैं कि इन सभी प्रश्नों पर उचित बहस के लिए मौका होगा। इसी उम्मीद के साथ सेमीनार का आयोजन किया गया और एक रपट प्रस्तुत की गई। हम उम्मीद करते हैं कि देश के विकास के मॉडल में शिक्षा के उचित स्थान की समझ विकसित करने की दिशा में यह शुरूआत होगी। और इस समझ से इस सड़ी-गली मशीन को धीरे-धीरे बदलने और ठीक करने में मदद मिलेगी जिससे यह मुक्ति और समानता पाने की अपनी मूल भूमिका निभा सकें।

भोपाल में हुए इस राष्ट्रीय सेमीनार में सर्वसम्मति से यह तय किया गया कि सिफारिशें करते समय होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के अनुभवों का लाभ सिफारिशों को पुष्ट करने के लिए किया जाय, क्योंकि होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (जो पिछले 13 वर्षों में विकसित हुआ है) ने अनुवर्तन और फीड बेक, किट विकसित करने और वितरित करने का तरीका, पाठ्यक्रम विकसित करने, और शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के साथ-साथ जिले स्तर पर कार्यक्रम को क्रियान्वित करने का एक ठोस उदाहरण पेश किया है। अर्थात अन्य नवाचारों में अनुभवों का भी लाभ लिया जाय।

एक दूसरा विचार भी उभरा कि विज्ञान शिक्षण को अलग करके नहीं देखा जा सकता, इसे अन्य विषयों के साथ समग्रता में ही देखना होगा। और विशेषकर प्राथमिक शिक्षा के लोकव्यापीकरण पर ध्यान देना होगा जो कि देश की प्राथमिकता रही है, और आगे आने वाले दिनों में भी रहेगी। अतः "शिक्षा की चुनौती" वाले दस्तावेज से जो प्रमुख धारणाएं उभरती हैं, वे इस प्रकार है :

(क) प्राथमिक शिक्षा का लोक व्यापीकरण भारत में नहीं हो सकेगा।

(ख) जिले स्तर पर मॉडल स्कूल स्थापित किए जायें। स्वाभाविक रूप से जिनका लाभ शहरी और ग्रामीण सम्पन्न तबके को ही मिलेगा।

(ग) उच्च शिक्षा निजी क्षेत्रों को सौंपी जाय, जिसे कुछ ही लोग पा सकें।

(घ) सभी नीति संबंधी परिवर्तन राजनैतिक और वित्तीय सीमाओं के अन्तर्गत ही हों।

इन सभी से जो संकेत मिलते हैं वे शिक्षा को अभिजात्य चरित्र प्रदान करने वाले और सर्व सामान्य जनों के लिए और कटौती करने वाले हैं। इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए अधिक से अधिक लोगों को स्कूली शिक्षा से भी वंचित करना होगा। सेमीनार में इस उभरते हुए विचार की कड़ी आलोचना हुई। यह बात बहुत जोर देकर कही गई कि शिक्षा का लोकव्यापीकरण और उसमें गुणात्मक सुधार का काम वित्तीय सीमाओं की बात करके सीमित न किया जाय, वरन इसके लिए आवश्यक धन जुटाया जाय। क्योंकि देश की नियति न केवल 21वीं सदी के लिए है बल्कि आने वाली सभी सदियों के लिए इसी पर निर्भर करेगी।

(शेष पृष्ठ 18 पर)

विज्ञान एवं बौद्धिक विकास

रमाकान्त अग्निहोत्री

भाषा-विज्ञान और व्याकरण में कोई विशेष अन्तर नहीं है। पर अक्सर विद्यार्थी व्याकरण के अध्ययन को नीरस और निरर्थक पाते हैं। यह सच भी है कि भाषा-विज्ञान जानने से ही कोई भाषा नहीं सीख जाता। सच तो यह है कि अनेक लोग भाषा-विज्ञान के विषय में कुछ भी नहीं जानते, कई भाषाएं सहज ही बोल और समझ लेते हैं। दूसरी ओर, कई बड़े-बड़े भाषा वैज्ञानिक अपनी मातृ-भाषा के सिवा कोई भी दूसरी भाषा समझ या बोल नहीं सकते। अतः भाषा पढ़ाने के लिए हम भाषा-विज्ञान अधिक पढ़ाएं इससे कोई विशेष लाभ नहीं है। लेकिन जिन वैज्ञानिक तरीकों से भाषा के क्षेत्र में शोध कार्य होता है, उनका प्रयोग कक्षा में निश्चय ही हो सकता है। इससे दो लाभ होंगे : एक तो बच्चों का ध्यान भाषा के सही रूपों की ओर आकर्षित होगा। दूसरे, बच्चों के बौद्धिक विकास में भी मदद मिलेगी। बहुत ही साधारण शब्दों में विज्ञान की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार है : हम कुछ अवलोकन करते हैं। फिर उन अवलोकनों के आधार पर एक नियम बनाते हैं। उस नियम का प्रयोग अपने परिवेश में करते रहते हैं। अक्सर उपवाद सामने आते हैं और हम नियम बदलते रहते हैं। यही प्रक्रिया भाषा के माध्यम से हम बहुत ही सरल तरीके से कक्षा में सिखा सकते हैं। वैज्ञानिक शोध की प्रक्रिया एवं भाषा-विज्ञान के सिद्धांतों का कक्षा में सहज सदुपयोग कैसे हो सकता है, इसका एक उदाहरण में इस लेख में देना चाहता हूं। इस संबंध में हमारा सबसे बड़ा सहारा यह है कि हमें अवलोकन लेने कहीं दूर नहीं जाना है। हर विद्यार्थी के पास भाषा का अपार भंडार है। उसको सही भाषा सिखाने के लिए और उसके बौद्धिक विकास के लिए हमें उसी का प्रयोग करना है।

मानकीकृत हिन्दी के निम्नलिखित वाक्यों पर ध्यान दीजिए। बच्चे अक्सर इसके प्रयोग में गलतियां करते हैं।

1. राम खाना खाता है।
2. सीता खाना खाती है।
3. राम ने खाना खाया।
4. सीता ने खाया खाया।
5. राम ने चाय पी।
6. सीता ने चाय पी।
7. सीता ने राम को बुलाया।
8. राम ने सीता को बुलाया।

होशंगाबाद के आस-पास के क्षेत्र में, उदाहरण के लिए, पहले दो वाक्यों के लिए आप अक्सर :

1. राम खाना खाबो।
2. सीता खाना खाबो।

का प्रयोग देखेंगे। इलाहाबाद के आस-पास के क्षेत्रों में आपको इन वाक्यों के लिए निम्न प्रयोग मिल सकते हैं :

1. [क] राम खाना खातबा/खात है।
2. [क] सीता खाना खात है।
3. [क] राम खान खाहे लेहेस।
4. [क] सीता खाना खाहे लेहेस/लेहेसि।
5. [क] राम चाय पी लेहेस।
6. [क] सीता चाय पी लेहेसि।
7. [क] सीता राम के बोलायसि।
8. [क] राम सीता के बोलयस/बोलापन।

यह तो हम पहले लेखों में कह ही चुके हैं कि बोलियां वैज्ञानिक तौर पर उतनी ही नियमबद्ध हैं जितनी की मानकीकृत भाषाएं। यह कहना भी गलत है कि बोलियां हिन्दी भाषा का बिगड़ा हुआ रूप हैं। हिन्दी स्वयं निस्संदेह बोलियों से ही पनपी है। लेकिन समाजिक विकास के साथ-साथ बोलियों और मानकीकृत हिन्दी का प्रयोग अलग-अलग परिस्थितियों में होने लगा है। परेशानी उस समय होती है जब हमारे गांवों के बच्चे इसलिए पिछड़ जाते हैं क्योंकि वे बोलियों का प्रयोग उन परिस्थितियों में कर बैठते हैं जहां मानकीकृत हिन्दी का प्रयोग वांछित है। या उनकी हिन्दी में बोलियों का प्रभाव दिखाई पड़ता है।

उदाहरण के लिए होशंगाबाद के एक हाई स्कूल के विद्यार्थीयों ने हिन्दी में प्रस्ताव लिखते समय निम्नलिखित वाक्य लिखे :

[क] इस मेले की सौन्दर्य बड़ी ही देखने योग्य है।

[ख] हमको बहुत आनन्द आए।

[ग] उसने अपनी पत्नी को खिला करता था।आदि।

स्पष्ट है कि ये बच्चे मानकीकृत हिन्दी के वे नियम नहीं समझ पाये हैं जिनके अनुसार हिन्दी वाक्य के पदों में तालमेल रहता है। हम कक्षा में क्या करें जिससे बच्चों का ध्यान भाषा के सही नियमों की तरफ आकर्षित हो और साथ-साथ उनका बौद्धिक विकास भी हो।

होशंगाबाद विज्ञान

हिन्दी के ऊपर दिए गये 1–8 तक के वाक्य देखिए। इसके आधार पर हम कह सकते हैं कि हिन्दी में कर्त्ता और क्रिया में एक विशेष तालमेल रहता है। कक्षा में हम विद्यार्थियों से कह सकते हैं कि वाक्य 1-2 जैसे कई वाक्य बनाए। यह वाक्य बोर्ड पर लिखें जैसे :

1. राम खाना खाता है.
2. लड़का पानी पीता है.
5. मोहन सेब खाता है.
7. रमेश पुस्तक पढ़ता है.
9. विनोद खाना बनाता है.
3. सीता खाना खाती है.
4. लड़की पानी पीती है.
6. आरती सेब खाती है
8. अन्जु पुस्तक पढ़ती है.
10. अनिता खाना बनाती है. आदि.

इन वाक्यों के आधार पर कर्त्ता और क्रिया पदों में तालमेल का एक नियम विद्यार्थी सरलता से बना लेंगे। वह नियम कुछ इस प्रकार होगा : नियम–1. यदि कर्त्ता पुल्लिग है, तो क्रिया में "ता" लगेगा और यदि कर्त्ता स्त्रीलिंग है, तो क्रिया में "ती" लगेगा :

क्या यह नियम ऊपर दिए गये वाक्यों के लिए सही है ? हाँ। क्या यह नियम हिन्दी भाषा के सभी वाक्यों के लिए सही है ? नहीं। यह मेरा अनुभव है कि बच्चों को इस छानबीन करने में विशेष आनन्द आता है। नियम बनाते हुए उन्हें एक विशेष उपलब्धि का अहसास भी होता है। बच्चे शीघ्र ही नियम–1 के कई अपवाद आपके सामने रखेंगे जैसे :

1. लड़के पानी पीते हैं।
2. लड़कियां पानी पीती हैं।
3. मैं खाना खाता हूँ।
4. वह सेब खाता है।
5. हम खाना खाते हैं।
6. वे सेब खाते है। आदि।

इस तरह के कई उदाहरण जमा करके बच्चों से कहिए उन्हें अलग-अलग ग्रुपों में बाँट दें। धीरे-धीरे बच्चे समझने लगेंगे कि नियम–1 क्यों गलत है। उनके लिए यह समझना मुश्किल नहीं होगा कि हिन्दी में कर्त्ता और क्रिया का तालमेल लिंग पर ही नहीं अपितु "वचन" और पुरुष पर भी निर्भर करता है। काफी अभ्यास के बाद बच्चे कर्त्ता-क्रिया के तालमेल की तालिका स्वयं बना लेंगे।

नियम–2 कर्त्ता-क्रिया के तालमेल की तालिका नीचे देखें।

वर्तमान काल में यदि कर्त्ता विभक्ति-रहित होगा, तो कर्त्ता और क्रिया का तालमेल नियम–2 के अनुसार ही होगा। यदि कर्त्ता में विभक्ति है, जैसा कि ऊपर वाक्य 3–6 में हैं, तो अलग नियम बनाना पड़ेगा। विद्यार्थी 3, 4, 5, 6 जैसे वाक्य बनाएं, जैसे।

1 मोहन ने काम किया।
2. आरती ने चाय पी।
3. आरती ने खाना खाया।
4. मोहन ने किताब पढ़ी। आदि।

नियम–3 यदि कर्त्ता के साथ "ने" लगा हो। तो क्रिया का रूप कर्म के अनुसार होगा :

क्या ऐसा भी हो सकता है कि कर्त्ता और कर्म दोनों में ही विभक्ति लगी हो ? वाक्य 7-8 में ऐसा ही है। बच्चे ऐसे कहे और वाक्य भी बना सकते है :

1. अध्यापक ने राम को बुलाया।
2. आरती ने अन्जु को मारा।
3. अनिता ने विनोद को पढाया, आदि।

बच्चे सरलता से नियम 4 बना लेंगे।

नियम–4 यदि कर्त्ता और कर्म दोनों में विभक्ति लगी हो, तो क्रिया पुल्लिंग एक वचन में होती है। यह आवश्यक नहीं कि बच्चों के साथ नियम बनाते समय कर्त्ता, कर्म विभक्ति आदि जैसे, शब्दों का प्रयोग किया जाये। कर्त्ता-करने वाले हैं। विभक्ति के लिए यह कहना काफी होगा कि "ने" "को" आदि का प्रयोग हुआ है।

इन नियमों को बनाते, समझते, सुलझाते बच्चों को कई दिन लगेंगे। लेकिन उन्हें इसमें आनन्द आयेगा और उन्हें इससे बहुत लाभ भी होगा। संक्षेप में :

कर्त्ता	क्रिया
1. विभक्ति-रहित	नियम–2
2. विभक्ति-सहित, कर्म विभक्ति-रहित	नियम–3
3. कर्त्ता और कर्म दोनों विभक्ति-रहित	नियम–4

इस लेख में भाषा-विज्ञान के नियमों का अत्यधिक सरलीकरण किया गया है। उद्देश्य भाषा-विज्ञान में हुनर पाना नहीं अपितु बच्चों को अपनी गलतियाँ स्वयं पहचानने के तरीकों से अवगत कराना है। आशा है इस तरह के अभ्यास से कक्षा का काम रोचक होगा, बच्चों का ध्यान भाषा के सही रूपों की तरफ आकर्षित होगा एवं बच्चों का बौद्धिक विकास भी होगा।

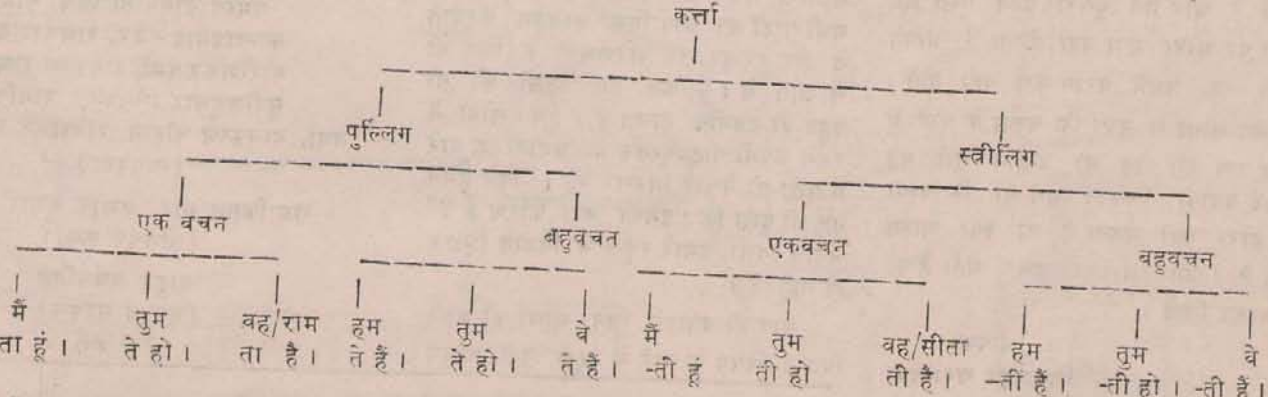

सवालीराम क्लब

आदरणीय सवालीराम,

मैं शिवशंकर खरवाड़िया कक्षा 11 वीं का छात्र हूँ। मेरा विषय कामर्स है। मेरी बाल विज्ञान में अधिक रूचि होने के कारण मैं इस विज्ञान के बारे में कुछ न कुछ सोचा करता हूँ। तथा जब मैं कुछ सोचता हूँ तो मेरे मन में कुछ प्रश्न उठते हैं, जिनके समाधान के लिए गांव के कुछ व्यक्तियों से इन प्रश्नों के बारे में पूछता हूँ। मेरे मन में बाल विज्ञान संबधी कुछ प्रश्न हैं, कृपया आप सही समझाकर लिखें ताकि उन लोगों को मैं समझा सकूं। मैंने आपसे कुछ प्रश्न पूछे थे, जिनका उत्तर मुझे मिला। मैंने लोगों को भी समझाया। पर वे कहते हैं कि क्या शास्त्र गलत है और तुम्हारा विज्ञान सही है? मैंने आपसे पूछा था, क्या गूलर में फूल आते हैं? आपने बताया था इन पेड़ों के फूल बाहर से दिखाई नहीं देते, क्योंकि ये एक फल के समान दिखाई पड़ते हैं। पर लोगों का कहना है कि जिसको गूलर का फूल दिखाई देता है वह भाग्यवान होता है। और उसका फूल वर्ष में एक बार दिखाई देता है। वह दिन पूर्णिमा का होता है। फूल रात में जब खिलता है तब तेज सफेद प्रकाश होता है। मैंने भी गूलर के फूल के बारे में कहानियां पढ़ी हैं। जिसको वह फूल दिखाई देता है वह धनवान बन जाता है। यह बातें सही हैं या गलत, बतावें? और मैंने दूसरा प्रश्न पूछा था, चम्पा पर भौंरा क्यों नहीं बैठता? आपने लिखा था उसमें पराग कण नहीं होते। जब मैंने लोगों से कहा कि चम्पा के फूल में पराग कण नहीं होते तो उन्होंने मुझे वह चौपाई बतायी जिसका अर्थ था कि चम्पा पर भौंरा नहीं बैठता है तो क्या शास्त्र गलत है? अगर आपका उत्तर सही है तो समझाकर लिखें।

आपका
शिवशंकर खराड़िया

प्रिय शिवशंकर,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा पत्र काफी अच्छा लगा। ये बड़ी अच्छी बात है कि तुम विज्ञान में इतनी अधिक रुचि रखते हो। तुम्हारे उपकरण की कार्य प्रणाली पढ़ी, चित्र भी देखा। बधाई, आशा है इसी तरह कुछ आगे भी करोगे और अपनी उपलब्धियों से मुझे परिचित कराते रहोगे। मुझे एक बात समझ में नहीं आ रही कि तुम्हें जो जानकारियां मैंने दी थी उसके असत्य होने के बारे में तुम्हें सदेह कैसे हुआ। लोग यदि तुम्हारी बातों को नहीं मानते तो उनके सामने प्रमाण प्रस्तुत करो। तुम शायद सही तर्क व सही प्रमाण नहीं खोज पा रहे हो। वैसे भी इन्सान जो मानता है उसे बदलना काफी मुश्किल होता है। कोपर्निकस ने भी जब कहा कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है तो उसका शुरू-शुरू में काफी विरोध हुआ था, लेकिन आज सारा विश्व जानता है। मानता है कि पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगा रही है।

समाज में आज उपलब्ध सही जानकारी को फैलाने में काफी हद तक सफलता मिली है। फिर भी अभी काफी कुछ किया जाना बाकी है। यह स्थापित करने की जरूरत है कि लोग किसी भी बात को आंख मूंद कर मान लेने की बजाय उसके पीछे छुपे नुकसानों को समझें, उस बात की सत्यता की परख करें और वास्तविकता को समझें।

गूलर के फूल के बारे में मैंने तुम्हें पहले लिखा ही था कि गूलर के फूल होते हैं। उनको देखना कोई मुश्किल काम नहीं है। गूलर के फूल दरअसल गूलर के फल के अन्दर होते हैं। कभी देखना, तुम्हें

"हमारे बच्चों ने आखिर आपका क्या बिगाड़ा है?"

आदरणीय सवालीराम जी

नमस्ते,

हम लोग शा. मा. शा. धौलपुर कलां के भूतपूर्व छात्र हैं। श्रीमान जी हमें इस बात का आश्चर्य होता है कि हमारे छोटे भाइयों ने ऐसा कौनसा गुनाह किया है जिस कारण आप इन छात्रों की ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं।

हमें सन् 81-82 की पढ़ाई का ख्याल आता है, तब हमारे शिक्षक हमें विज्ञान के सभी पाठों का प्रायोगिक अध्ययन करवाते थे और दूर-दूर तक परिभ्रमण के लिए भी ले जाते थे। लेकिन इन छात्रों की तो बहुत ही दयनीय हालत है। हम लोगों ने इनसे अपनी पाठ्यपुस्तक के प्रयोगों के बारे में पूछा तो बेचारे निरुत्तर रहे। फिर हमने यह भी पूछा कि "इसका क्या कारण है?" जवाब मिला, हमारे स्कूल में विज्ञान शिक्षक ही नहीं है।

आप ही बताइये, जिन छात्रों को अपने विज्ञान विषय के बारे में कुछ नहीं मालूम वे लड़के पास कैसे होंगे? हम लोग जिस समय पढ़ते थे उस समय विज्ञान की प्रदर्शनी लगती थी लेकिन अब तो वहां प्रयोग भी नहीं होते। है ना आश्चर्य की बात!

श्रीमान जी से हम सभी भूतपूर्व छात्रों की प्रार्थना है कि आप इन छात्रों की पढ़ाई की ओर ध्यान रखें। हम ग्राम सामरधा के भूतपूर्व छात्र बहुत परेशान हैं। क्या करें? किससे कहें? आपसे प्रार्थना है, आप इन लोगों की मदद करें।

प्रार्थी

समस्त ग्रामवासी छात्र, सामरधा
कान्ताप्रसाद गूर्जर, रामचन्द्र बांके, गौरीशंकर वर्मा, रामकृष्ण राजपूत, सुनीलकुमार सोलंकी, रामकिसन वर्मा, बालकृष्ण चौहान, रविशंकर वर्मा, (सामरधा)

राधाकिसन गौर, अशोक कुमार गौर (धौलपुर कलां)

ठाकुर अर्जनसिंह
(भूतपूर्व सरपंच)
2/3/86

मैंने परजीव के बारे में पढ़ा। तो ये बातें परजीव जन्तु और बेल देखी जैसे, जुंआ, अमर बेल, पटार, आदि पर जब मैं एक गांव गया तब मैंने एक आम के पेड़ के ऊपर बेल देखी जो करीब एक-एक फीट की थी। और पत्ती करीब 5 इंच लम्बी थी। जिसका विन्यास सरल था और उसकी जड़ें झखरा थीं, जो डाली पर बिखरी थी। वह कौन सी बेल है ? कृपया बतावें अगर मैं उस जड़ को भेजना चाहूं तो कि किस प्रकार आपके पास भेज सकू । इसका भी उपाय बतावें ।

मैंने एक उपकरण बनाने की सोची, जिसको हम भाप से बजने वाली घंटी कह सकते हैं। उसको बनाने की सामग्री-एक घंटी, एक लोहे की फिरखनी, जिसमें चार पंखी लगी हों और वह हल्की हो तथा दो टिन की नली जो कम चौड़ी हों। और वह फिरखनी में लगी हो। एक लकड़ी की लम्बी रीप, एक रस्सी, एक बड़ा डिब्बा, एक स्टोव और एक नली आदि।

प्रयोग विधि :

पहले हम लकड़ी की रीप में एक फीट की दूरी पर दो लोहे की पतली छड़ ठोंक देंगे। जिसमें पंखी और घंटी की नली फिट हो सके। हम उस लोहे की एक छड़ में पंखी और दूसरी में घंटी बिठा देंगे। ध्यान रहे घंटी ऊपर की छड़ में ही हो। घंटी साइकिल में जो लगी रहती है और गोल घूमती है। दोनों के बीच में रस्सी को चक्की के पट्टे समान बांध देंगे और डिब्बे के मुंह में एक छेद करेंगे और छेद में एक पतली नली फंसा देंगे। डिब्बे में थोड़ा पानी भर देंगे। उस डिब्बे को स्टोव पर रख देंगे। कुछ समय तक पानी को गर्म होने देंगे। वह भाप उस डिब्बे से बंद हो जायेगी। ध्यान रहे कहीं से भाप नहीं निकले। उस भाप को नली द्वारा पंखी पर फेकेंगे जिसमें पंखी फिरने से रस्सी भी घूमेगी और घटी बजेगी। कृपया इस प्रयोग को करके देखें।

शिवशंकर

पत्र में तुमने ये नहीं लिखा कि तुमने उस उपकरण को प्रायोगिक रूप से करके देखा कि नहीं ? इसे करके देखना। फिर मुझे लिखना। मुझे लगता है तुम्हारे उपकरण में साइकिल घंटी लगाने पर शायद वह घंटी बजेगी नहीं। दूसरी बात, तुम्हारी फिरकनी के घूमने की है कि उसे घूमने के लिए अपेक्षित दबाव भाप डाल भी पाती है कि नहीं ? इसके अलावा फिरकनी के घूमने पर रस्सी कैसे घूमेगी ये भी स्पष्ट नहीं हुआ। खैर ·····तुम इसे प्रायोगिक रूप से करके देखना, फिर मुझे लिखना।

हां, तुमने जिस बेल का जिक्र किया है वह तुम मुझे लिफाफे में भर कर डाक से भेज सकते हो। लिफाफे में बेल की दो तीन पत्तियां भी हों तो ठीक है।

तुमने सवालीराम क्लब के बारे में तो होशंगाबाद विज्ञान में पढ़ा ही होगा। तुम अब सवालीराम क्लब के सदस्य बन गये हो। तुम अपने और साथियों को भी कहो कि वे सवालीराम क्लब के सदस्य बनें। इस बार तुम्हें चींटियों के जीवन और उनकी गति–विधियों, भोजन आदि के बारे में जानकारी इकट्ठी करना है। फिर ये सब मुझे लिखना।

ये सब करने के बाद पत्र जरूर भेजना।

—तुम्हारा
सवालीराम

फल के अन्दर ढेर सारे गुच्छे दिखाई देंगे। कीड़े फल के छेद में से घुसकर परागण करते हैं, ऐसा पीपल और बड़ में भी होता है। गूलर के फूल को देखने और भाग्य के अच्छे या बुरे होने में कोई सबंध नहीं है।

आमतौर पर होता ये है कि जो चीज लोगों को दिखती नहीं या मिलती नहीं या जो दुर्लभ हैं, उन्हें देखना या न देख पाना लोग भाग्य से जोड़ लेते हैं। मैं जब छोटा था तो लोग ऐसे ही कई किस्से सुनाते थे। एक अच्छे भाग्य का लक्षण था, यदि कोई रेलगाड़ी के पुल के नीचे बस से गुजरे और उसी समय यदि किस्मत से ऊपर पुल पर से गाड़ी गुजरे तो समझो आप बहुत भाग्यशाली है। उस जगह रेलगाड़ी के पुल के नीचे से सड़क गुजरती थी। रेलगाड़ियां कम चलती थीं और इसलिए इस कम सम्भाविता वाली घटना को लोगों ने भाग्य से जोड़ लिया। धीरे-धीरे जब बसें और रेलगाड़ियां खूब चलने लगीं तो यह भाग्य की बात धरी ही रह गई। इसी तरह लोग कहते हैं कि "अरे ये लो अभी तुम्हारी ही याद हो रही थी और तुम खुद आ गये, सौ साल उमर है तुम्हारी।" और देखा कि यही सौ साल की उमर वाला आदमी 50 या 60 साल में ही भगवान को प्यारा हो गया। हमारे सारे शगुन-अपशगुन इस तरह की अप्रत्याशित व कम संभावना वाली घटनाओं को लेकर बने हैं। शगुन और जो घटना है उसमें कोई तार्किक सम्बन्ध नहीं होता। सिर्फ भावनात्मक विश्वास होता है। लेकिन यह विश्वास हिम्मत, जोश और सहनशक्ति देता है, जिससे कार्य करने में मदद मिलती है और अप्रत्याशित को स्वीकारने की ताकत मिलती है। बस, और कुछ नहीं।

तुम्हारा
सवालीराम

देवगढ़। देवास जिले की टप्पा तहसील हाटपीपल्या से आठ किलोमीटर दूर, लगभग चार हजार की आबादी वाली छोटी और शांत बस्ती। एकलव्य देवास ने इसे चुना गिजुभाई शिक्षा संगोष्ठी के कार्यस्थल हेतु। जिले के सभी अंचलों से जागरूक 40 शिक्षक शिक्षा-विभाग के आदेश से आए। यहां यह बता देना प्रासंगिक होगा कि भागीदारी हेतु शिक्षकों का चयन एकलव्य ने ही किया। देवास जिला शिक्षा अधिकारी ने उस सूची पर अपने आदेश की मोहर लगा दी। इससे लाभ यह हुआ कि शिक्षा के क्षेत्र में कुछ कर गुजरने के अरमान रखने वाले एक शासकीय प्रक्रिया के अधीन एकत्रित हो सके। आवास एवं भोजन की व्यवस्था संगोष्ठी स्थल पर ही की गई थी।

तीनों दिन (2, 3 एवं 4 नवम्बर) गांव में विशेष चहल पहल-नजर आने लगी।

गुजरात के प्रसिद्ध शिक्षा-विद् श्री गिजुभाई बधेका (जन्म-15 नवम्बर 1885) का यह जन्म शताब्दी वर्ष है। बाल शिक्षा में सतत् बीस वर्षों तक इनका प्रयास तथा बाल शिक्षा की पन्द्रह पुस्तकों का लेखन व सहयोगियों के 223 पुस्तकों के लेखन में गिजुभाई का शिक्षा के क्षेत्र में में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 600 से अधिक शिक्षक/शिक्षिकाओं का प्रशिक्षण भी गिजुभाई के कार्य में सम्मिलित है।

स्वर्गीय गिजुभाई का सम्पूर्ण साहित्य गुजराती में है। श्री काशीनाथ विवेदी ने हिन्दी अनुवाद भी किये हैं। अन्य व्यक्तियों द्वारा किये हिन्दी अनुवाद व शोध ग्रन्थ भी अब प्रकाश में आ रहे हैं। आज "दिवास्वप्न की चर्चा सब ओर है। राजस्थान शिक्षा विभाग ने अपनी पत्रिका "नयाशिक्षक" का जनवरी-मार्च 84 अंक दिवास्वप्न के प्रकाशन का ही निकाला। "पलाश" ने जनवरी-फरवरी 85 का सम्मिलित अंक गिजुभाई विशेषांक के रूप में प्रस्तुत किया।

पहले दिन संगोष्ठी के कार्यक्रम के तीन सत्र रखे गये। प्रथम सत्र का प्रारंभ आपसी परिचय तथा इस कार्यक्रम के उद्देश्य को स्पष्ट करने से हुआ। संगोष्ठी की अध्यक्षता हाटपीपल्या सर्कल के सहायक शाला निरीक्षक श्री अफगानी कर रहे थे तथा संचालन डॉ. प्रकाश कांत। इस सत्र में श्री जीवनसिंह ठाकुर ने अपना पर्चा पढ़ा। आलेख का शीर्षक था—"शिक्षा के चाँद पर गिजुभाई के कदम।" विषय पर चर्चा की गई। मुद्दों पर बहस के साथ एक बजे सत्र समापन हुआ।

दोपहर 3 बजे द्वितीय सत्र का प्रारंभ हुआ यतीश कानूनगो के आलेख–गिजुभाई की शिक्षा में चित्रकला, संगीत और नाटकों का स्थान से। विषय की रोचकता ने व गिजुभाई के शैक्षिक प्रयोगों की सार्थकता की जानकारी ने भागीदारों को सोच की एक नई दिशा दी। पर्याप्त चर्चा के पश्चात इन्हीं मुद्दों को लेकर समूह निर्माण व समूहों के माध्यम से विशिष्ट ठोस कार्य की रूपरेखा निर्माण करने का निर्णय लिया गया। इसी सत्र में श्रीमती मधु ठाकुर का आलेख–"बच्चों की रूचि, विकास की डोर से बाँधे रखने का अनोखा ढंग" पढ़ा गया। चर्चा के साथ 5.30 पर सत्र समाप्त किया गया।

तीसरा सत्र रात आठ से नौ बजे तक रखा गया, जिसमें श्री प्रमोद उपाध्याय का आलेख "गिजुभाई की प्रासंगिकता और सोच की दिशाएं" पढ़ा गया। तथा इस पर चर्चा की गई।

रात 9 बजे पश्चात धार एकलव्य केन्द्र के श्री कालूराम शर्मा द्वारा स्लाइड शो रखा गया, जिसमें साँपों सम्बन्धी विशेष विस्तृत जानकारी दी गई। अधिकांश साँप जहरीले नहीं होते इस जानकारी के बाद देर रात तक शिक्षकों में जानकारी का आदान-प्रदान चलता रहा।

रविवार 3 नवम्बर के प्रथम सत्र का प्रारंभ डॉ. रामनारायण स्याग द्वारा 'एकलव्य संस्था' के कार्य एवं "होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम" के बारे में जानकारी प्रस्तुत करने से किया गया। विवाद के घेरे में घिरे कार्यक्रम और संस्था के बारे में कई शंकाएं जागरूक शिक्षकों के मन थी, उनका समाधान किया गया।

पिछली बातों को आगे बढ़ाते हुए ठोस कार्यक्रम बनाने के निश्चय के साथ सभी भागीदारों को छः समूहों में बाँटा गया। समूह इस प्रकार थे–1 नाटक समूह, 2–गणित समूह, 3–चित्रकला समूह,

(शेष पृष्ठ 12 पर)

रपट :

बाल मेलों की

बच्चों की छिपी हुई प्रतिभा को उभारने और उनमें हाथों से छोटी-छोटी वस्तुएं बनाने का आत्मविश्वास और कुशलतायें विकसित करने के उद्देश्य से एकलव्य के होशंगाबाद केन्द्र ने पिछले दिनों रोहना, होशंगाबाद और रायपुर गांवों में बाल मेले आयोजित किए। इन मेलों में प्रयास किया गया कि सहजता और सरलता के महौल मे बच्चों की अभिव्यक्ति क्षमता को भी मौका मिले।

बाल मेला छोटे स्तर पर एवं गांव में क्यों ?

(क) बाल मेला छोटे स्तर पर करने का प्रयास इसलिए किया जा रहा है ताकि बच्चों की ज्यादा से ज्यादा भागीदारी हो सके। अधिकांश बच्चे बड़े-बड़े मेलों में भाग नहीं ले पाते। सभी बच्चों में प्रतिभा व कौशल होता है। सामान्य तौर पर इन्हें विकसित होने का मौका नहीं मिलता। ऐसे मेलों की आवश्यकता है जिसमें सभी बच्चे आसानी से भाग ले सकें।

(ब) मेले में ताम-झाम, तड़क-भड़क, जटिल मॉडल आदि बहुत होते हैं। बच्चे ऐसे मेलों में स्वतंत्र महसूस नहीं करते। हम चाहते हैं ऐसे मेले शुरू करना, जो वास्तव में बच्चों के लिए हों। बच्चों को प्रदर्शित करने के लिए नहीं। ऐसे मेले जिसमें स्थानीय परिवेश में आसानी से उपलब्ध सामग्री का अधिकाधिक उपयोग किया जाए। इनसे भी बहुत कुछ बनाया जा सकता है। मेले में बच्चों को मजा आए और विभिन्न गतिविधियों में भाग लेने का मौका मिले।

बाल मेला में निम्नलिखित कार्यक्रम किए गए।

(क) मिट्टी के खिलौने, ठठेरे से खिलौने बनाना.

(ख) रंगोली व लिपाई करना.

(ग) स्थानीय सामग्री से प्रादर्श बनाना.

(घ) ग्रामीण जानकारी प्रतियोगिता.

(च) वैज्ञानिक व अन्य प्रादर्श (मॉडल).

(छ) विज्ञान के प्रयोग एवं खेल.

(ज) सांस्कृतिक कार्यक्रम (गीत आदि).

(झ) कबड्डी प्रतियोगिता.

(ट) चित्र बनाना, कहानी लिखना, अधूरी कहानी पूरी लिखना व शब्दों के आधार पर कहानी बनाना.

(ठ) छोटे बच्चों के लिए खेल–कूद भाग-दौड़ प्रतियोगिताएं.

(ड) शिक्षक, पालक गोष्ठी, शाला की स्थिति एवं नई शिक्षा नीति पर चर्चा.

यहां पेश है रोहना गांव के मेले की रपट—

ग्राम सेवा समिति रोहना, एकलव्य शैक्षिक शोध एवं नवाचार संस्थान होशंगाबाद एवं शिक्षा विभाग ने मिलकर ग्राम रोहना में दिनांक 1 एवं 2 अक्टूबर को बाल मेला आयोजित किया। इस मेले में रोहना के अलावा डोलरिया, सांवलखेड़ा, पालनपुर, बाईखेड़ी, बीसारोड़ा, खेड़ला एवं गुनौरा आदि गांव के करीब 500 छात्र-छात्राओं के भाग लिया।

बच्चों की मानसिकता को ध्यान में रखकर उनकी समझ, परिवेश एवं शैक्षणिक स्तर के आधार पर विभिन्न खेलकूद एवं प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। जिनमें चित्रकला, चित्रों के द्वारा कहानी लेखन, विज्ञान के खेल, कबड्डी, दौड़, सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता, एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम मुख्य थे। पूरे समय जहां कुछ बच्चे रंगीन पेन्सिलों को लेकर कागज पर चित्र बना रहे थे, वही कुछ बच्चे विज्ञान के अद्भुत पर सरल खेलों में अपना दिमाग लड़ा रहे थे। कुछ बच्चों का आकर्षण अपने ही गांव की पट्टी एवं पोंगल (एक प्रकार की घास) से छोटे-छोटे खिलौने बनाने की ओर था तो कुछ एक दीवार पर लगे चित्रों के सामने बैठकर कहानी लिखने की कोशिश कर रहे

थे। कुछ नन्ही-मुन्नी बच्चियां अपनी शिक्षिकाओं के नेतृत्व में सांस्कृतिक कार्यक्रम के लिए सजने-धजने में लगी थीं। जो इनके मेले का प्रमुख आकर्षण था। दोनों दिन के इस कार्यक्रम में सबसे ज्यादा उत्सुकता सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता, खेलकूद एवं सांस्कृतिक कार्यक्रमों में दिखाई दी। सामान्य ज्ञान प्रतियोगिता में विभिन्न शालाओं की एक-एक टीम चुनी गई थी जिनसे उनकी शिक्षा, खेती-बाड़ी, गांव एवं परिवार तथा अन्य छोटी-मोटी जानकारियों से संबंधित प्रश्न पूछे गये। इस प्रतियोगिता की विशेषता यह थी कि प्रश्न पूछते ही चारों ओर बच्चे उत्तर जानने को उत्सुक दिखाई देते थे। टीम के बाहर के बच्चे भी अपने-अपने दिमाग के खजाने से प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयत्न करते दिखाई देते थे। जिस टीम से प्रश्न पूछा जाता उसको ही इसका उत्तर देना होता था। उसके न बताने पर क्रमशः अन्य टीमों को मौका दिया जाता था। इसके बाद बाहर के बच्चों को भी उत्तर बताने के लिए कहा जाता था। इस प्रकार करीब एक डेढ़ घण्टे चली इस प्रतियोगिता में बच्चों के साथ-साथ पालकों की संख्या भी अधिक दिखाई दी। एक तात्कालिक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया था। जिसमें अपनी इच्छा से बच्चों ने चिट उठाकर विषय चुने और उन पर बोले।

इस मेले का प्रमुख प्रयास बच्चों की सृजनात्मकता व अभिव्यक्ति को मौका देना व उन्हें नये आयामों से परिचित करवाना था। इस संदर्भ में बच्चों द्वारा बनाए गए प्रादर्शों का स्थानीय संदर्भ महत्वपूर्ण है। बच्चों ने सरलता से उपलब्ध सामग्री से आकर्षक व सुन्दर मॉडल बनाए जिनमें कई तो विज्ञान की अवधारणाओं से संबंधित थे और कई ग्रामीण जीवन से। एकलव्य के हरदा सेन्टर द्वारा विकसित खेलों में भी बच्चों को बहुत मजा आया। दीवार पर चढने वाली एक छिपकली से खेलने के लिए तो बाकायदा लाईनें लग गई थी। बच्चे तो बच्चे बड़े भी लग गए थे। टेनग्राम से विभिन्न आकृतियां बनाने की दिमागी कसरत भी बच्चों को खूब रास आई।

कार्यक्रम के अन्त में पालक शिक्षक संवाद को आगे बढ़ाने एवं शिक्षा से संबधित गांव से लेकर राष्ट्रीय स्तर तक के विभिन्न मुद्दों पर बात करने के उद्देश्य से एक शिक्षक पालक गोष्ठी का आयोजन भी किया गया। इस बैठक में विभिन्न बिन्दुओं पर काफी लम्बी चर्चा के साथ ही इस प्रकार के मेलों की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया, जिससे बच्चों का एक स्वस्थ एवं सहज मानसिक विकास हो सके।

(शेष पृष्ठ 10 से)

4–पुस्तकालय समूह, 5–भाषा समूह, 6–बाल मेला समूह।

यह निश्चित किया गया कि कल के सत्र में सभी समूह अपने प्रतिवेदनों में ठोस कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करेंगे। साथ ही क्रियान्वयन की विधि व मूल्यांकन पद्धति का उल्लेख भी अवश्य करेंगे। कार्य की रूपरेखा की सामान्य चर्चा के साथ दोपहर एक बजे सत्र समाप्त हुआ।

दोपहर के सत्र का प्रमुख आकर्षण रहा, म. प्र. लोक संगीत अकादमी उज्जैन द्वारा प्रस्तुत कार्यक्रम। श्री सतीश दवे व उनके सात बाल साथी सगोष्ठी के भागीदार बने। श्री दवे ने बच्चों के साथ उनके काम करने के ढंग तथा नुक्कड़ नाटकों की उपयोगिता को लेकर उठाये अनेक प्रश्नों के उत्तर दिये। प्रयोग के रूप में एक नुक्कड़ नाटक भागीदारों के बीच खेला गया। सांय 6 बजे नाटक का आयोजन ग्रामवासियों के लिये गांव के बीच रखा गया। रात्रिकालीन सत्र में समूहों में बैठकर ठोस कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई गई।

सोमवार 4 नवम्बर। सत्र का प्रारंभ प्रत्येक समूह द्वारा अपने प्रतिवेदन पाठ के साथ हुआ। शिक्षण विधियों के नये प्रयोग सुझाये गये। शिक्षकों ने स्वैच्छिक रूप से नई विधा के साथ कुछ करने के लिये समय देने का निश्चय किया। शिक्षकों में उत्साह का यह उबाल कितना स्थायी रह पाता है यह तो समय ही बतायेगा।

तीन बाल-गतिविधि केन्द्रों की स्थापना, बाल पुस्तकालय हेतु पुस्तकों के प्रदान से की गई। ये नये बालकेन्द्र बागली, देवगढ़ और देहरियासाहू में स्थापित किये गये हैं। ऐसे दो बालकेन्द्र अरलावदा व हाटपीपल्या में पहले ही चल रहे हैं।

नये साथियों में भी बालकेन्द्र खोलने का उत्साह था किन्तु पैसों की कमी के कारण यह भविष्य के लिये स्थगित रखा गया। इस अन्तिम सत्र में एकलव्य उज्जैन के अरविन्द गुप्ते और इन्दौर के ओमप्रकाश रावल की भागीदारी विशेष रूप से उल्लेखनीय रही।

प्रतिभागियों द्वारा कार्यक्रम की समीक्षा के साथ सत्र का समापन हुआ। कार्यक्रम की सफलता आने वाले समय में ही स्पष्ट हो पायेगी, किन्तु एकलव्य का यह प्रयास सार्थक अवश्य ही कहा जा सकता है। यदि वह इस प्रकार के कार्यक्रमों के माध्यम से विभागीय नीति के कारण उपेक्षित शिक्षकों के मन सोया शिक्षक जगा सके।

यतीश कानूनगो, देवास

हर माह पढ़िए

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका

मूल्य : 2-50 रुपए

गणित

शून्य पर आधारित स्थानमान अंक–पद्धति का आविष्कार

आज हम अपनी सारी गणनाएं केवल दस अंक-संकेतों से करते हैं। सारे संसार में आज इसी अंक-पद्धति का व्यवहार होता है। यह अंक-पद्धति भारत की खोज है।

यह वैज्ञानिक अंक-पद्धति संसार को भारत की सबसे बड़ी देन है। इस प्रकरण में हम देखेंगे कि इस अक-पद्धति की खोज भारत में कब और कैसे हुई।

वैदिक काल के विज्ञान पर विचार करते समय हमने देखा है कि उस समय अक-संकेतों का अस्तित्व अवश्य रहा होगा, लेकिन वे अंक-संकेत कैसे थे, इसके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं मिलती। इतना निश्चित है कि वैदिक काल के पंडितों-पुरोहितों ने शून्य पर आधारित स्थानमान अंक-पद्धति की खोज नहीं की है।

आगे कई सदियों तक इस नई अंक-पद्धति की खोज नहीं हुई। इसके लिए ठोस सबूत भी हैं। अंक-संकेतों का इस्तेमाल अक्षरों के साथ ही होता है। हमारे देश की सबसे पुरानी लिपि है सिन्धु सभ्यता की लिपि, जो अभी तक पढ़ी नहीं गई हैं। फिर हमें **अशोक के लेख** मिलते हैं। ये लेख ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों में हैं। इन्हीं लेखों में हमें पहली बार अंक-संकेत देखने को मिलते हैं। लेकिन अशोक के समय (ईसा पूर्व तीसरी सदी) की अंक-पद्धति आज की अंक-पद्धति से भिन्न थी।

अशोक के समय की अंक-पद्धति में शून्य नहीं था। उस समय अभी केवल दस संकेतों से सारी संख्याएँ लिखने की खोज नहीं हुई थी। उस समय 1 से 10 तक की संख्याओं के लिए अलग–अलग संकेत थे। आगे 20, 30, 40, 50,.....100, 200 आदि के लिए भी स्वतन्त्र संकेत थे। अशोक के ब्राह्मी लिपि के लेखों में सारे अंक–संकेत देखने को नहीं मिलते। (चित्र 1 देखें)

हम देखते हैं कि 50 और 200 के लिए केवल एक-एक संकेत है और ये भी भिन्न-भिन्न आकार के हैं। अशोक के ब्राह्मी लेखों के सिर्फ इन चार संख्या-संकेतों से उस समय की अंक-पद्धति का स्वरूप पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता, लेकिन दो–तीन सदियों बाद के अंक-संकेतों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि अभी शून्य पर आधारित दशमिक अंक-पद्धति की खोज नहीं हुई थी।

अशोक के बाद जब उसका साम्राज्य टूट गया तो महाराष्ट्र और आन्ध्र प्रदेश में सातवाहनों का शासन शुरू हुआ था। लगभग उसी समय से उत्तरी महाराष्ट्र में शकों का भी शासन शुरू हुआ। उस समय पश्चिमी महाराष्ट्र में पहाड़ों को काटकर बहुत सारी गुफाएँ बनाई गई थीं। इन गुफाओं में दान से सम्बन्धित लेख भी मिलते हैं। इन लेखों में अंक-संकेत भी पाए जाते हैं। (चित्र 1 देखे)

नाणेघाट लेखों के अंक-संकेत में 1 से 10 तक के लिए स्वतन्त्र संकेत हैं। आगे 20 से 100 तक की दहाइयों के लिए भी स्वतन्त्र संकेत हैं। 200, 300, 400 आदि के संकेत 100 के संकेत के साथ 1, 2, 3, 4 आदि के संकेत जोड़कर बनाए गए हैं। 1000 के लिए फिर एक नया संकेत है और हजारों की संख्याएं इसी संकेत के साथ 1,

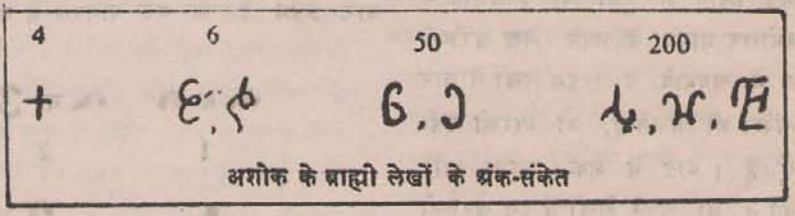

अशोक के ब्राह्मी लेखों के अंक-संकेत

चित्र-1

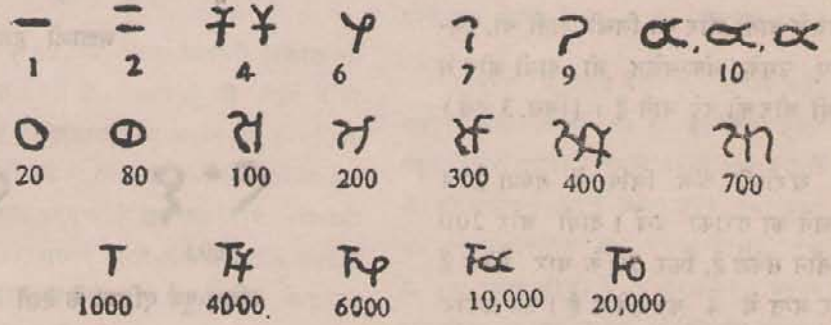

नाणेघाट लेखों के अंक-संकेत

चित्र-2

खरोष्ठी अंक-संकेत

चित्र-3

2, 3, 4 आदि के संकेत जोड़कर बनाई गई हैं।

अत: स्पष्ट है कि ईसा की पहली सदी तक हमारे देश में शून्य पर आधारित स्थान-मान अंक-पद्धति का प्रचलन नहीं था।

अशोक के समय में पश्चिमोत्तर भारत में खरोष्ठी लिपि का व्यवहार होता था। इस लिपि का निर्माण पश्चिमी एशिया की आरमेई लिपि से हुआ था। अशोक ने पश्चिमोत्तर भारत के अपने लेख खरोष्ठी लिपि में खुदवाये थे। इन लेखों में चार अंक-संकेत भी मिलते हैं, जो तिरछी खड़ी रेखाएं हैं। बाद में शक, कुषाण आदि शासकों ने भी अपने लेखों में इस खरोष्ठी लिपि का इस्तेमाल किया। इन लेखों में अंक-संकेत भी हैं। खरोष्ठी लिपि दायीं ओर से बायीं ओर को लिखी जाती थी, इसलिए उसके अंक-संकेत भी दायीं ओर से बायीं ओर को पढ़े जाते हैं। (चित्र 3 देखें)

खरोष्ठी अंक लिपि में संख्या 274 लिखने का तरीका देखें। दायीं ओर 200 के तीन संकेत हैं, फिर 70 के चार संकेत हैं और अन्त में 4 का संकेत है। इस प्रकार 274 को लिखने के लिए कुल आठ संकेतों का इस्तेमाल हुआ है। स्पष्ट है कि यह शून्य पर आधारित दशमिक स्थानमान अंक-पद्धति नहीं है।

दरअसल, ईसा पूर्व की पहली सदी तक अभी नई अंक-पद्धति की खोज नहीं हुई थी। संसार के अन्य देशों में तरह-तरह की अंक-पद्धतियों का इस्तेमाल होता था, किन्तु नई अंक-पद्धति (दशमिक पद्धति) के दर्शन कहीं नहीं होते। हमारे देश में भी इस नई अंक-पद्धति के इस्तेमाल के बारे में ईसा की छठी सदी तक ठोस सबूत नहीं मिलते। पहली बार 594 ई. के एक दानपत्र में संख्या 346 को हम इस नई अंक-पद्धति में लिखी हुई देखते हैं।

लेकिन साहित्यिक प्रमाणों से जानकारी मिलती है कि हमारे देश में इस नई अंक-पद्धति की खोज ईसा की आरम्भिक सदियों में हो चुकी थी। पुरानी अंक-पद्धति के स्थान पर इस नई अंक-पद्धति को अपनाने में कई सदियों का समय लगा होगा। पुराने का मोह जल्दी नहीं छूटता। हम जानते हैं कि नई अंक-पद्धति की खोज होने पर भी कुछ अभिलेखों में ईसा की दसवीं सदी तक पुरानी अंक-पद्धति का इस्तेमाल होता रहा। यूरोप के देशों में यह नई अंक-पद्धति नौवीं सदी में पहुँच गई थी, फिर भी यूरोप में पुरानी रोमन तथा यूनानी अंक-पद्धतियों का 1700 ई. तक प्रभुत्व रहा।

हम नहीं जानते कि भारत में इस नई अंक-पद्धति का आविष्कार ठीक किस समय तथा किस स्थान पर हुआ और किस पंडित ने किया। आज यह सब जानने के लिए हमारे पास साधन नहीं हैं। उपलब्ध साधनों के आधार पर हम सिर्फ यही जान सकते हैं कि अनुमानतः किस सदी में इस नई अंक-पद्धति की खोज हुई होगी।

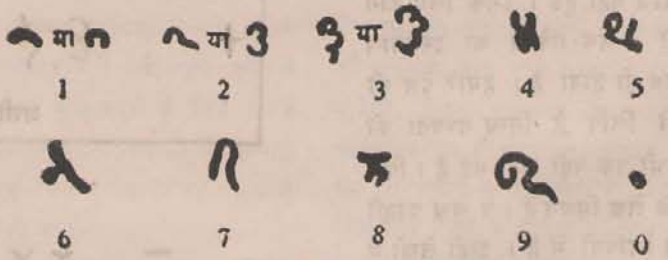

बक्षाली हस्तलिपि के अंक-संकेत

चित्र-4

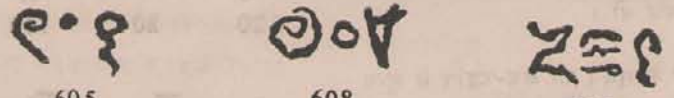

दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से प्राप्त अभिलेखों में नई अंक-पद्धति में दी गई शकाब्द-सूचक तीन संख्याएं।

चित्र-5

हमने देखा है कि वेदों में 'शून्य' शब्द नहीं मिलता। गणना के सन्दर्भ में शून्य शब्द का प्रयोग **आचार्य पिंगल के छन्द:सूत्र** में देखने को मिलता है। यह ग्रन्थ ईसा के एक-दो सदी पहले रचा गया था। इसमें छन्दों की मात्राओं की गिनती के सन्दर्भ में 'रूपे शून्यम्', द्वि: शून्ये' जैसे शब्द आए हैं। हिसाब कुछ ऐसा है कि यहाँ 'अभाव' या 'घटाने' के अर्थ में शून्य शब्द का प्रयोग हुआ है। लगता है कि उस समय गणना में शून्य की धारणा जन्म ले रही थी। आगे जैन ग्रन्थों में और कुछ पुराणों में 'अंकस्थान' शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है, जो सम्भवत: अंकों के स्थानमान का द्योतक है।

करीब सौ साल पहले पेशावर जिले के भक्षाली गांव से गणित से सम्बन्धित एक हस्तलिखित पुस्तक मिली थी, जो अब **भक्षाली हस्तलिपि** के नाम से प्रसिद्ध है। यह पुस्तक बाद की शारदा लिपि में लिखी हुई है, परन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि मूल पुस्तक की रचना ईसा की चौथी-पांचवीं सदी में हुई होगी। इस पुस्तक में 1 से 10 तक के अंक-संकेत दिए हुए हैं और नई अंक-पद्धति का इस्तेमाल हुआ है। इसमें शून्य के लिए बिंदी के आकार का चिन्ह है।

(चित्र 4 देखें)

सब बातों पर विचार करके हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ईसा की पहली या दूसरी सदी में शून्य पर आधारित इस नई अंक-पद्धति की खोज हो चुकी थी। 594 ई. के जिस दानपत्र में 346 संख्या नई अंक-पद्धति में लिखी गई है, उसमें शून्य का संकेत नहीं है। लेकिन आठवीं सदी के एक दानपत्र में संख्या 30 में शून्य है और इसे एक छोटे वृत्त के रूप में लिखा गया है।

नई अंक–पद्धति ईसा की सातवीं सदी में दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में भी पहुंच गई थी। सुमात्रा, बंका तथा चम्पा से ऐसे कुछ अभिलेख मिले हैं जिनमें नई पद्धति के संख्यांकों का प्रयोग हुआ हैं। (चित्र 5 देखें) भारतीयों के साथ ही यह नई अंक-पद्धति उन देशों में पहुँची थी।

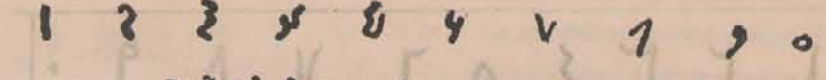

दसवीं सदी की एक अरबी पुस्तक में गुबार (भारतीय) अंक

चित्र 6

सारांश यह है कि नई अंक-पद्धति की खोज ईसा की पहली-दूसरी सदी में हुई, अभिलेखों में इसका इस्तेमाल छठी सदी से होने लगा और दसवीं सदी के बाद सिर्फ इसी नई अंक-पद्धति का व्यवहार देखने को मिलता है। इस बीच हमारे देश में गणित व ज्योतिष में बहुत सारे ग्रन्थ लिखे गए। लेकिन ये ग्रन्थ पद्य में हैं, इसलिए इनमें **शब्दांकों** या **अक्षरांकों** का इस्तेमाल हुआ है, जिनकी जानकारी हम आगे देंगे। अब यहां हम देखेंगे कि भारत की इस नई अंक पद्धति का विदेशों में प्रचार-प्रसार कैसे हुआ।

अरब देशों में भारतीय अंक-पद्धति

अरब देशों के साथ भारत के सम्बन्ध बहुत पुराने हैं। ईसा की आरम्भिक सदियों में फारस की खाड़ी और सिकन्दरिया के बन्दरगाह तक भारतीय माल पहुँचता था। लेकिन यह उस समय की बात है जब अभी दक्षिण अरबिया के लोग इस्लाम में दीक्षित नहीं हुए थे और भारत में नई अंक-पद्धति का पूरा विकास नहीं हुआ था।

सन् 622 ई. में अरबिया में इस्लाम की स्थापना होती है। आगे के सौ साल में ही इस्लाम का झंडा पूर्व में भारत की सीमा तक और पश्चिम में स्पेन तक फहराने लगता है। राजधानी बगदाद से खलीफा सारे इस्लामी राज्य पर शासन करने लग जाते हैं। बगदाद इस्लामी संस्कृति तथा विद्या का केन्द्र बन जाता है।

खलीफा ज्ञान-विज्ञान के प्रेमी थे। उनके शासनकाल में अनेक यूनानी ग्रन्थों के अरबी भाषा में अनुवाद हुए। फिर उन्हें भारतीय ज्ञान-विज्ञान की जानकारी मिली। खलीफा अल्-मन्सूर के राज्यकाल (753-774) में सिन्ध के किसी राजा के दूत बगदाद पहुँचे थे। उनके साथ कुछ पंडित भी थे। ये अपने साथ ज्योतिष के ग्रन्थ ले गए थे। यह 771 ई. की बात है। खलीफा की आज्ञा से अरबी भाषा में इन ग्रन्थों के अनुवाद हुए। बाद में ज्योतिष, गणित तथा चिकित्सा से सम्बन्धित अनेक भारतीय ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद हुए।

इसी समय अरबों को भारतीय अंक-पद्धति की जानकारी मिली। अरबों की अपनी लिपि थी, अंक-संकेत भी थे। भारतीय अंक-पद्धति की वैज्ञानिकता को समझकर अरबों ने आरम्भ में भारतीय अंक-संकेतों को भी अपना लिया। भारतीय अंकों को वे **गुबार अंक** कहते थे। गुबार का अर्थ होता है धूल। हमारे देश में पाटी पर धूल बिछाकर उंगली से अंक लिखने का भी रिवाज रहा है, इसलिए गणित के पुराने ग्रन्थों में अंकगणित के लिए **धूलिकर्म** शब्द मिलता है। अरबी गणितज्ञों ने आरम्भ में अपनी पुस्तकों में भारतीय अंक-संकेतों का इस्तेमाल किया है। (चित्र 6 देखें)

आरम्भ में अरब देशों में अरबी तथा गुबार अंक दोनों का ही इस्तेमाल होता रहा। फिर अरबों ने अपने अरबी अंक-संकेतों को ही पसन्द किया। अंक-पद्धति तथा शून्य का संकेत भारतीय थे, परन्तु 1 से 9 तक के अंक-संकेत अरबी थे। दरअसल, महत्व की चीज थी अंक-पद्धति, न कि अंक-संकेत।

(चित्र 7 देखें)

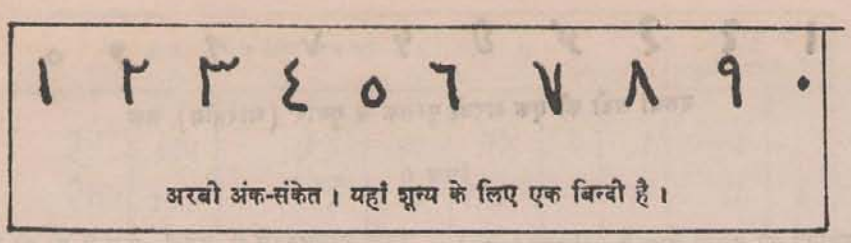

अरबी अंक-संकेत। यहां शून्य के लिए एक बिन्दी है।

चित्र-7

ऐसा लगता है कि भारतीय व्यापारियों के माध्यम से अंक-पद्धति की ख्याति सिकन्दरिया के बन्दरगाह तथा पश्चिमी एशिया के सीरिया आदि देशों में कुछ पहले ही पहुंच गई थी। सातवीं सदी के सीरिया के एक विद्वान **सेवेरस सेवोख्त लिखते है**—"मैं हिन्द वालों के सारे शास्त्रों की चर्चा नहीं करूंगा। मैं उनकी अद्भुत गणनाओं के बारे में भी नहीं कहूँगा। मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि यह गणना नौ चिन्हों से होती है।"

शून्य के चिन्ह को अंक मानने का रिवाज हमारे यहां भी नहीं है। अत: सेबोख्त के नौ चिन्हों वाली गणना का स्पष्ट अर्थ है—नई स्थानमान अंक-पद्धति। बहुत सम्भव है कि अरबों को इस भारतीय अंक-पद्धति की जानकारी सबसे पहले सीरिया से ही मिली होगी।

अरबी विद्वानों ने भारतीय अंकों की खूब स्तुति की है। अनेक अरबी गणितज्ञों ने स्पष्ट लिखा है कि उन्हें यह अंक-पद्धति हिन्द से प्राप्त हुई है। अन्त में अरबों के माध्यम से ही इस भारतीय अंक-पद्धति का यूरोप में प्रचार-प्रसार हुआ।

यूरोप में भारतीय अंक तथा अंक-पद्धति

ईसा की दसवीं-ग्यारहवीं सदी में अरबों ने स्पेन में कई विद्या-केन्द्रों की स्थापना की थी। यूरोप के पण्डित पुराने यूनानी ज्ञान को भूल चुके थे, परन्तु यह ज्ञान अब अरबी ग्रन्थों में सुरक्षित था। इसी ज्ञान की खोज में यूरोप के विद्वान अब स्पेन के अरबी विद्या-केन्द्रों में पहुँचने लगे। इन विद्या-केन्द्रों में, न केवल यूनानी ग्रन्थों के, बल्कि भारतीय ग्रन्थों के भी अनुवाद उपलब्ध थे। **अल्ख्वारिज्मी** (825 ई.) जैसे प्रख्यात मध्य-एशियाई गणितज्ञों ने भारतीय गणित के आधार पर ग्रन्थ लिखे थे और इनमें भारतीय अंक-संकेत तथा अंक-पद्धति की जानकारी दी गई थी। अब इन ग्रन्थों के लैटिन भाषा में अनुवाद होने लगे। इसी समय यूरोप के विद्वानों को भारतीय अंक-संकेत, अंक-पद्धति तथा गणित की विधियों के बारे में ठोस जानकारी मिली। ज्ञान-विज्ञान के लिए यूरोप मूरों (यूरोप के अरबों) का कितना ऋणी है, इसके बारे में गणितशास्त्र के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ हूपर महाशय लिखते हैं :

"बहुत-सी ऐसी बातें हैं जिनके लिए हम मूरों (अरबों) के कृतज्ञ हैं। उन्होंने औषधि और चिकित्सा-विज्ञान सम्बन्धी बहुत-सी बातें हमें दी।.....सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने अन्धकार में सोए हुए असभ्य यूरोप में भारत व पूर्व के देशों के ज्ञान का प्रकाश फैलाया। हिन्दवालों से सीखी हुई अद्भुत अंक-पद्धति का उन्होंने ही स्पेन में प्रचार किया। इसी नई अंक-पद्धति ने विज्ञान और इन्जीनियरी को तेजी से आगे बढ़ाया है।"

आज अंग्रेजी तथा यूरोप की अन्य भाषाओं के साथ जिन अंक-संकेतों का इस्तेमाल होता है, उन्हें हम भ्रमवश अंग्रेजी या रोमन अंक कहते हैं। दरअसल, ये भारतीय अंक-संकेत हैं। जो भारतीय अंक-संकेत अरब देशों में पहुंचे थे, उन्हीं का यूरोप के देशों में प्रचार हुआ। (दसवीं सदी की लैटिन की एक पुस्तक में प्रयुक्त अंक संकेत चित्र 8 में देखें।)

(शेष पृष्ठ 18 पर)

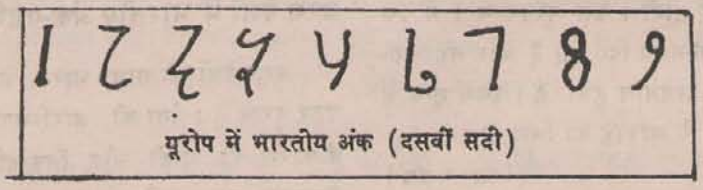

यूरोप में भारतीय अंक (दसवीं सदी)

चित्र 8

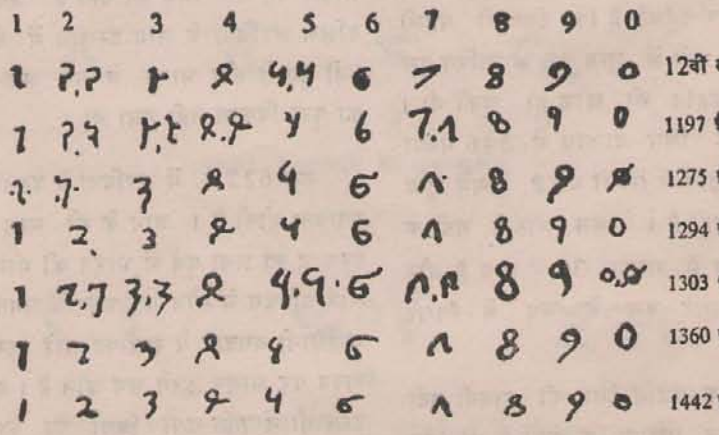

यूरोप में 12वीं से 15वीं सदी तक भारतीय अंकों का विकास

चित्र 9

क्या आप गणित से डरते हैं ?

—अनवर जाफरी

पाँचवीं-छटवीं कक्षा तक पहुँचते-पहुँचते अधिकांश विद्यार्थी गणित से घबराने लगते हैं और गणित से घबराहट अक्सर जिन्दगी भर बनी रहती है । इसका एक बड़ा कारण यह है कि गणित की पढ़ाई में अधिकतर जोर सूत्रों के रटने पर दिया जाता है और इस बात पर नहीं कि सूत्रों की समझ कैसे विकसित हो इनका उपयोग कैसे हो और समस्या हल करने में मजा कैसे आए ।

गणित के किसी एक प्रश्न को हल करने के एक से अधिक तरीके हो सकते हैं । पर गणितशास्त्री ऐसे तरीके को अधिक महत्व देते हैं जिसमें समस्या की गहरी समझ झलके और सीधे-सीझे उत्तर तक पहुंचा दे । ऐसा ही तरीका न केवल अधिक आकर्षक और सुन्दर दिखता है, बल्कि अधिक प्रभावशाली भी होता है । इसके विपरीत अगर साधारण या घिसे पिटे तरीके से सवाल हल किया जाये तो उत्तर तो जरूर मिल जाएगा पर वह गणितज्ञों के लिये वैसा ही होगा जैसा किसी अच्छे घोड़े पर सवार यात्री के लिये गधे पर जाता मुसाफिर और किसी छात्र के लिये भी घिसे-पिटे तरीके का बार-बार उपयोग करना न तो शैक्षिक और न ही मजेदार हो सकता । दिलचस्प और घिसे-पिटे तरीके के बीच का अन्तर समझने के लिये आइये कुछ उदाहरण देखें :

कितने मैच खेले गये ?

टेनिस की एक प्रतियोगिता में 512 खिलाड़ियों ने भाग लिया । प्रतियोगिता नॉआउट पद्धति (जिसमें एक मैच हारते ही खिलाड़ी प्रतियोगिता से बाहर हो जाता है) से हुई । इस प्रतियोगिता के अन्त में एक खिलाड़ी विजयी हुआ । बताइये प्रतियोगिता में कुल कितने मैच खेले गये ?

इस प्रश्न को हल करने का एक तरीका तो जल्दी दिख जाता है । वह यह है कि हर राउन्ड में खेले गये मैचों की संख्या गिनते जाएँ । कुल मैचों की संख्या हर राउन्ड में खेले गये मैचों की संख्या का जोड़ होगा । इस तरह पहले राउन्ड में 512/2=256 मैच होंगे । दूसरे राउन्ड में 256/2=128 मैच होंगे । इसी तरह तीसरे, चौथे, पाँचवे, छटवें, सातवें, आठवें और नवें राउन्ड में क्रमशः 64, 32, 16, 8, 4, 2, 1 मैच होंगे । (तालिका देखें)

इस प्रकार दी गई तालिका से हम देखते हैं कि नवें राउन्ड में फाइनल मैच खेला जायेगा जिसको जीतने वाला विजयी होगा । एक से नौ राउन्ड के मैचों को जोड़कर हम पायेंगे कि प्रतियोगिता में कुल 511 मैच खेले गये । यह तो हुआ इस समस्या को हल करने का एक तरीका । क्या इसके अलावा और भी किसी तरह से इस सवाल का हल हो सकता है ? बगैर किसी गुणाभाग में पड़े हम इसी समस्या के लिये तर्क का यह तरीका अपना सकते हैं ।

प्रतियोगिता के हर मैच में दो खिलाड़ी खेलते हैं और उनमें से एक हारकर प्रतियोगिता से बाहर हो जाता है । पूरी प्रतियोगिता में एक खिलाड़ी को छोड़कर बाकी सब खिलाड़ी किसी न किसी राउन्ड में एक मैच हारते हैं । और प्रतियोगिता से बाहर हो जाते है । इसलिये प्रतियोगिता से जितने खिलाड़ी बाहर हुये उतने ही मैच इसमें होंगे। यह संख्या हमेशा भाग लेने वाले कुल खिलाड़ियों की संख्या से एक कम होगी । इसलिये यदि प्रतियोगिता में कुल 512 खिलाड़ी थे तो उसमें कुल मैच (512–1) यानी 511 होंगें । अब अगर किसी प्रतियोगिता में 924 खिलाड़ियों ने भाग लिया तो हम सीधे-सीधे बता सकते है कि उसमें 924 मैच हुए । अगर यकीन न आये तो पुराने तरीके से जोड़कर देख लीजिये !

आइये एक और समस्या का हल ढूंढें ।

मान लीजिये एक प्याली चाय है और एक प्याली काफी । अब अगर आप किसी चम्मच से एक चम्मच चाय लेकर काफी की प्याली में डाल दें और फिर उस काफी की प्याली से एक चम्मच मिश्रण वापस चाय की प्याली में डाल दें, तो बताइये क्या काफी में अधिक चाय पहुंची या चाय में अधिक काफी ?

पहले इस पहेली को बीज गणित की मदद से हल करें । मान लीजिये एक प्याली में 200 मि. ली. द्रव आता है और एक चम्मच में 5 मि. ली. द्रव । (प्याली में थोड़ी जगह खाली भी रहनी चाहिये ताकि उसमें एक चम्मच द्रव और डाला जा सके।) पहले 5 मि. ली. चाय काफी में डाली गई । चाय की प्याली में बची कुल 195 मि. ली.

राउन्ड	1	2	3	4	5	6	7	8	9
मैचों की संख्या	256	128	64	32	16	8	4	2	1

चाय और काफी की प्याली में कुल द्रव हुआ 205 मि. ली.। उस मिश्रण में से एक चम्मच द्रव निकाल कर वापस चाय में डाला जाये तो उस चम्मच में चाय और काफी का अनुपात कितना होगा ?

205 मि. ली. द्रव में 200 मि. ली. काफी है तो एक मि. ली. द्रव में $\frac{200}{205}$ मि. ली . काफी होगी। तो 5 मि. ली. के चम्मच में काफी होगी :

$$\frac{205}{200} \times 5 = \frac{200}{41} \text{ मि. ली.}$$

$$= 4\frac{36}{41} \text{ मि ली.}$$

और चाय होगी :

$$\frac{5}{205} \times 5 = \frac{5}{41} \text{ मि. ली.}$$

मिश्रण का एक चम्मच जब काफी की प्याली से निकल गया तो उस में कितनी काफी और चाय बची ?

काफी बची :

$$200 - 4\frac{36}{41} = 195\frac{5}{41}$$

और चाय बची :

$$5 - \frac{5}{41} = 4\frac{36}{41}$$

आप देख सकते हैं कि काफी की प्याली में जो द्रव बचा है उसका कुल आयतन $195\frac{5}{41} + 4\frac{36}{41}$ बराबर 200 मि. ली. ही है । अब काफी की प्याली से एक चम्मच मिश्रण (जिसमें $4\frac{36}{41}$ मि. ली. काफी है और $\frac{5}{41}$ मि.ली. चाय)जब चाय की प्याली में डाला जाता है तो उस में कितनी चाय और कितनी काफी हो जाती है ? उस प्याली में पहले से चाय है 195 मि. ली.।

तो कुल चाय हो गई :

$$195 + \frac{5}{41} = 195\frac{5}{41} \text{ मि. ली.}$$

और काफी हुई :

$4\frac{36}{41}$ मि. ली. (क्योंकि उसमें पहले बिल्कुल काफी नहीं थी)। अब आप देख सकते हैं कि इस आदान प्रदान के बाद चाय की प्याली में $4\frac{36}{41}$ मि. ली. काफी है और काफी की प्याली में $4\frac{56}{41}$ मि. ली. चाय है। मतलब जितनी चाय काफी में गई उतनी ही काफी चाय में आई।

शायद समस्या के इस हल से कई पाठक घबरा गये होंगे। चलिये एक ऐसा तरीका देखें जो शुद्ध तर्क पर आधारित है :

यह बाद तो साफ है कि चाय और काफी की प्यालियों से आदान प्रदान की प्रक्रिया के बाद दोनों प्यालियों में ठीक उतना ही द्रव बचता है जितना उनमें प्रारंभ में था। इसका तो मतलब यह हुआ कि आदान-प्रदान के बाद चाय की प्याली में जितनी चाय की जगह खाली हुई उतनी ही काफी उस प्याली में पहुंची और तर्क से काफी की प्याली में जितनी काफी बाहर हुई उतनी ही चाय उस में गई। इस के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि चाय की प्याली में जितनी काफी गई उतनी ही चाय काफी की प्याली में आई।

इन उदाहरणों से यह पता चलता है कि समस्या का कोई एक हल ढूंढना ही एक मात्र हमारा उद्देश्य नहीं होना चाहिये। कौन सा तरीका अधिक प्रभावशाली और सरल है, यह पता करना भी आवश्यक है। ऐसे ही तरीके में नई सोच भी झलकेगी। जब अधिक मात्रा में हिसाब (calculation) करना हो तो ऐसे प्रभावशाली तरीके बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं। और जहां कम्प्यूटरों से काम लिया जा रहा हो वहां भी समय की बहुत बचत हो सकती है।

ऐसे तरीके अपने आप में भी समस्या की गहराई को छूते हुए समाधान सुन्दर और आकर्षक लगते हैं और इनकी खोज करना ही एक अच्छे गणितज्ञ की निशानी होती है।

★ ★

अंक पद्धति (पृष्ठ 16 से)

ये अंक–संकेत अरब देशों में अपनाये गये उन गुबार अंकों से मिलते है, जो भारत से अरब देशों में पहुंचे थे। हमारे देश में जब नई अंक-पद्धति का आविष्कार हुआ तो 1 से 9 तक के पुराने अंक-संकेतों को कायम रखा गया और शेष अंक-संकेत छोड़ दिए गए। बाद में यही अंक-संकेत अरब देशों में और यूरोप में पहुँचे। अतः यूरोप में जो अंक-संकेत पहुंचे उनका विकास ब्राम्ही के अंक-संकेतों से हुआ है।

पन्द्रहवीं सदी में जब यूरोप में पुस्तकें छपने लगीं और अंकों के टाइप बने तो इन अंक-संकेतों को वर्तमान स्थायी रूप मिला। इस प्रकार 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 0 अंक-संकेत मूलत: भारतीय अंक-संकेत है। इसलिए आज हम इन्हें **भारतीय अन्तर्राष्ट्रीय** अंक कहते हैं। यूरोप ने न केवल भारतीय अंक-पद्धति को अपनाया बल्कि भारतीय अंक-संकेतों को भी अपनाया है। ★ ★

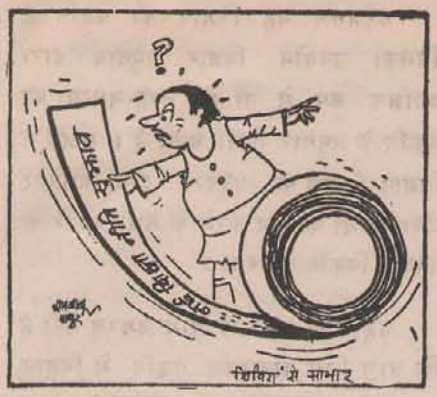

नई शिक्षा नीति

—'शिविरा' में

नई शिक्षा नीति के संदर्भ में हो रही बहस को सार्थक रूप देने के लिए "शिविरा" ने बहुत से पाठकों के विचार प्रकाशित किए हैं। हम उनमें से कुछ अंशों से चुनकर यहां पेश कर रहे हैं।

किसी नीति को लागू करने से पूर्व विद्यालय भवन, आवश्यक संसाधन और शिक्षण संबंधी सामग्री के अभाव की पूर्ति की जाये, शिक्षा को मंत्रियों के चंगुल से निजात दिलाकर शिक्षाविदों को सौंप दिया जाये।

धर्म संस्थानों द्वारा संचालित विद्यालय, धार्मिक पाठ्यक्रम बंद किये जायें और उन्हें कोई सरकारी सहायता नहीं दी जाये।

पाठ्यपुस्तकों की संख्या कम हो। पुस्तकें और कापियाँ नि:शुल्क दी जायें।

विज्ञान का युग है अत: विरोधाभास और कोरी कल्पना वाली धार्मिक पाठ्य सामग्री से परहेज किया जाना चाहिये।

शिक्षा, नीतिरीति, श्रेष्ठ लाइये पर मशीनरी में दोष होगा तो ? नीति या प्रणाली कच्चा माल है। उसे फैक्टरी में देना पड़ता है और फैक्टरी दोषयुक्त है तो वांछित उत्पादन मिल सकेगा ? कदापि नहीं।

मुबारक खान आजाद

छात्रों को अनुत्तीर्ण करने की परिपाटी को हटाया जाय, ताकि बालकों के मन से निराशा की भावना व तोतारटन्त पढ़ाई से मोहभंग हो तथा आदर्श व यर्थाथ के धरातल पर सही उतरे और जिज्ञासा व लगन से शिक्षा प्राप्त करने की आदत बने।

रामचन्द्र भंडारी

जिला स्तर पर आदर्श विद्यालय खोलने की बात को अस्वीकार करते हुये अधिकांश सहभागियों ने यह विचार व्यक्त किया कि इससे शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त विषमता को ही प्रोत्साहन मिलेगा। मातृभाषा को ही शिक्षण का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम माना गया।

वर्तमान शिक्षा पद्धति ज्ञान का सही मूल्यांकन करने में असमर्थ है। परन्तु जब तक किसी नये विकल्प को पूर्णत: परख नहीं लिया जाता, इसे छोड़ना कष्टदायी हो सकता है। यही बात नौकरी को डिग्री से अलग करने वाली बात पर लागू होती है।

शिक्षा नीति निर्धारण में अध्यापक संगठनों की सहायता ली जावे। मजबूत अध्यापक संगठन ही शिक्षा नीति के क्रियान्वयन में मददगार हो सकते हैं।

विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी

व्याख्याता [स्कूल शिक्षा] 36, पलीवालों का बाड़ा—पाली.

पढ़ाई के नाम पर प्रत्येक स्तर के छात्र पर जो अनावश्यक भारी बोझा पड़ता है, उसे हटाना लाजिमी है। छात्र किताबों-कापियों का बोझा ढोयें, या ज्ञानार्जन में लगें। क्या कोई ऐसी विधि नहीं निकल सकती, कि छात्र उल्लासपूर्वक कक्षा-शिक्षण में रुचि लें।

गाँवों और शहरों के बच्चों को समान शिक्षा हम देना चाहते हैं, यह कैसे संभव हो पाएगा ? क्या हम दोनों जगहों के बालकों को समान अवसर मुहैया करा सकते हैं ? नई शिक्षा-नीति यह फर्क कैसे मिटा पाएगी ?

शिवलाल झाला

रा. उ. मा. वि. सामरा [उदयपुर]

स्थानीय आवश्यकतानुसार शिक्षा पाठ्यक्रम बनाते समय उन विषयों की अनिवार्यता समाप्त करनी होगी, जिनका जीवन में अथवा स्थानीय नियोजन में कोई उपयोग नहीं होता।

सुरेश पंडित, प्रधानाध्यापक,
383, स्कीम नं.–2, अलवर

जनप्रतिनिधियों के लिये साक्षरता की अर्हता हो। हमारे पंच, सरपंच, एम. पी., एम. एल ए. अगर शिक्षित नहीं होंगे तो वे कैसे शैक्षिक सुधारों में रुचि लेंगे ? जिला स्तर पर आदर्श विद्यालयों की स्थापना का कोई औचित्य नजर नहीं आता है। इन पर जो कुछ व्यय किया जाना है उससे कई विद्यालयों को आदर्श रूप दिया जा सकता है। इसमें सर्वजन हित होगा। आदर्श विद्यालयों की स्थापना हेतु जो मूल उद्देश्य निश्चित किये गये हैं वे भ्रष्टाचार के इस युग में सफल होंगे, इसमें संदेह है। इसमें विशिष्ट वर्ग का ही हित होगा।

अताउर्रहमान कुरैशी
प्र. अ. रा. उ. प्रा. वि. झाँझनवाला
जैतारण [पाली]

पब्लिक स्कूलों को समाप्त करना आवश्यक है। सभी को एक ही प्रकार की शिक्षा मिलना आवश्यक है।

अजहर हुसैन [व्याख्याता]
रा. उ. मा. वि. गुढा गौडजी,
झुंझुनु

दस्तावेज इस बात को स्पष्ट नहीं करता

कि नौकरियों को डिग्रियों से किस प्रकार अलग रखा जायेगा तथा डिग्रियों के स्थान पर अन्य निर्णायक विकल्प क्या होगा !

शम्सुद्दीन

क्या शिक्षा को दो बेड़ियों से मुक्त कर सकते हैं ?

एक बेड़ी है समयसारिणी की दूसरी बेड़ी है पाठ्यक्रम की।

यदुनाथ थत्ते

जब तक देश का सामाजिक ढांचा नहीं बदला जायगा, कोई भी शिक्षा नीति सुखद परिणाम नहीं दे सकेगी।

आज पर्यावरण दूषित हो जाने, तनाव बढ़ जाने और सन्तुलित भोजन न मिल पाने कारण आदमी बहुत बीमार रहने लगा है। मैं किसी पढ़े लिखे व्यक्ति को जरा-सी बीमारी के लिये भी डॉक्टरों के पास जाते और पैसे ठगाते हुये देखता हूँ मुझे बड़ी कोफ्त होती है। मैं सोचता हूँ— कैसी है हमारी शिक्षा जो हमें अपनी छोटी-छोटी बीमारियों का इलाज करना या स्वस्थ रहना नहीं सिखा सकी ?

निशांत, पीलीबंगा,
जिला–श्रीगंगानगर [राज.]

★ ★

गोष्ठी (पृष्ठ 5 का शेष)

सार्थक विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम की ओर :

विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के नीचे दिए उद्देश्यो से शायद ही किसी की असहमति हो :

1. अपने आसपास के पर्यावरण में घटने वाली भौतिक प्रक्रियाओं में बच्चों की रुचि विकसित करना।
2. उनकी अवलोकन क्षमता बढ़े, जिससे वे इन प्रक्रियाओं में निहित स्वरूप या सिलसिले का पता कर सकें।
3. किसी भी घटना विशेष से संबंधित उपलब्ध जानकारी को इकट्ठा कर सकें, इस तरह का प्रशिक्षण देना।
4. प्रयोगों और गतिविधियों के जरिये और अधिक जानकारी विकसित कर सकें।
5. इस तरह की जानकारी को व्यवस्थित कर सकें और उन्हें तालिकाओं, स्तम्भालेखों, ग्राफ्स एवं अन्य तरीकों से प्रदर्शित कर सकें।
6. उपलब्ध जानकारी का विश्लेषण कर ठोस, तार्किक और प्रयोगसिद्ध निष्कर्षों तक पहुंच सकें।
7. इन निष्कर्षों का निचोड़ निकालकर किसी ढाँचे या मॉडल (Modle) की कल्पना कर सकें जिससे घटनाओं के बारे में भविष्यवाणी की जा सके।

दरअसल यह विज्ञान की पद्धति है जिसका उपयोग विज्ञान समुदाय द्वारा आंशिक रूप से या पूरी तरह समस्या की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। संक्षेप में विज्ञान शिक्षण का उद्देश्य होना चाहिए; "समस्याओं को हल करने के सभी प्रकार के कौशल विकसित करना।"

यह कहने की कोई खास जरूरत नहीं है कि आज जिस तोतारटंत पद्धति से विज्ञान पढ़ाया जा रहा है वह इन उद्देश्यों से कोसों दूर हैं।

विज्ञान शिक्षण के मान्य उद्देश्यों को पाने के लिए वर्तमान तरीके को पूरी तरह बदलना होगा।

सेमीनार में यह सिफारिश बहुत सशक्त ढंग से उभर कर आई कि उचित विकल्प तो यही होगा कि विज्ञान की मूल अवधारणाओं को स्पष्ट करने पर अधिक जोर दिया जाय, बजाए इसके कि उसे तथ्यों की बढ़ती हुई जानकारी देते जायें। एक अध्ययन सेंटर फार सेल्यूलर एण्ड मॉलीक्यूलर बायलॉजी हैदराबाद के प्रो. पी एम भार्गव ने इस अध्ययन की जानकारी सेमीनार में दी) से यह स्पष्ट हुआ है कि 1930 से विज्ञान में जहां तथ्यों की जानकारी बहुत बढी है, वहीं मूल अवधारणाओं की संख्या तब से नहीं बढ़ी है। यह तथ्य शिक्षा के उचित विकल्प वाली बात को अधिक मजबूत करते हैं।

★ ★

एकलव्य और मेडिको फ्रेन्ड सर्कल द्वारा गैस पीड़ितों के लिए प्रकाशित स्वास्थ्य पुस्तिका

"हमारी सेहत हमारी लड़ाई"

सहयोग राशि — **भोपाल गैस पीड़ितों के लिए : 1.00 रुपया**
अन्य : 5.00 रुपया
(डाक खर्च अतिरिक्त)

संपर्क : एकलव्य
ई 11208 अरेरा कालोनी
भोपाल 462016

नियति

चंदन यादव, हरदा

पीठ पर भारी स्कूली बस्ते को लटकाये हुए स्कूल से घर लौटते बण्टी ने कल्लू से कहा-कल्लू हम कल से तुम्हारे साथ नहीं रहेंगे, मम्मी कहती है, शरीफ घर के बच्चों के साथ रहा करो ? आइन्दा कल्लू के साथ साथ दिखे तो हम तुम्हारी पिटाई कर देगें।

तो क्या हम शरीफ घर के बच्चे नहीं हैं, बण्टी ?

मम्मी ने और कुछ नहीं कहा, पर हम तुम्हारे साथ रहे तो मम्मी हमें मारेंगी। बण्टी ने लाचारी के साथ कहा। इस बातचीत के बाद दोनों बच्चों के पास कहने के लिये कुछ भी नहीं रह गया। वे गुमसुम साथ-साथ चलते रहे। थोड़ी दूर चलने के बाद दोनों के रास्ते अलग-अलग होने का दोनों के लिये ही एक भिन्न अर्थ था। इससे पहले बिछुड़ते समय कल मुलाकात की उत्सुकता साथ रहती थी। किन्तु आज वे सदा के लिये बिछुड़ रहे थे। अलग होते समय कोई भी नहीं बोला।

एकाएक आई इस उलझन हर कल्लू रास्ते भर सोचता रहा। उसे यह समझ नहीं आ रहा था कि शरीफ घर के बच्चे आखिर होते किस तरह के हैं ? बंटी अगर शरीफ घर का बच्चा है तो क्यों है ? दोनों ही एक ही उम्र के हैं, एक ही कक्षा में पढ़ते हैं, पढ़ाई में अव्वल हैं, फिर यह शरीफ घर दोनों का दुश्मन कैसे बन बैठा ?

घर पहुँचकर कल्लू ने पीठ का बस्ता रखा, माँ उस समय चूल्हे के पास गीली लकड़ियों से जूझती हुई आग जलाने का प्रयास कर रही थी। धुंए के कारण आँसू गालों पर आकर ठहर गये थे, और चूल्हे की राख उड़कर सिर के बालों पर बैठ गई थी। कुछ देर के जूझने के बाद गीली लकड़ियों ने आग पकड़ ली। तब कहीं कल्लू की माँ को चैन मिला। माँ के पास पहुँचकर कल्लू ने अपनी परेशानी माँ के सामने रखी।

माँ बण्टी शरीफ घर का बच्चा है ना ?

हाँ बेटे, है तो। माँ को कल्लू की बात समझ नहीं आ रही थी। किन्तु माँ के चेहरे के भावों को बिना समझे कल्लू ने अगला प्रश्न किया।

और मैं ?

तुम भी शरीफ बच्चे हो ?

मगर बण्टी की मम्मी कहती हैं कि मैं शरीफ घर का बच्चा नहीं हूँ। माँ की बात पर कि "वह भी शरीफ घर का बच्चा है" उसे सहज ही विश्वास नहीं हो पाया। कल्लू की बात सुन माँ का दिल बैठ गया किन्तु कल्लू का मन रखने के लिये अपने को सम्हालकर फीकी हँसी हँसते हुये कहा, "बण्टी की मम्मी ने मजाक की होगी बेटे।" कल्लू के सिर पर प्यार से हाथ फेरते हुये माँ पास की कालोनी में बरतन मांजने चली गयी। माँ की बात से कल्लू को तसल्ली नहीं हो सकी। वह यह तो नहीं समझ पाया कि शरीफ घर के बच्चे कैसे होते हैं ? किन्तु उसके मन के कोने में यह बात जड़ जमाकर बैठ गई कि "वह शरीफ घर का बच्चा नहीं है।"

दूसरे दिन से कल्लू और बण्टी ने आपस में बोलना एवं एक दूसरे के साथ रहना बन्द कर दिया। इस रिक्त स्थान की जगह कल्लू की कुछ ऐसे लड़कों से मित्रता हो गई, जो उसी के जैसे परिवारों से आये थे। कुछ दिन बाद विज्ञान के पीरियड में मास्टरजी ने स्वास्थ्य के लिये सफाई का महत्व समझाते हुए कल्लू के कपड़े गंदे देख उसे क्लास में घुटने टेक खड़ा कर चेतावनी दी, "कल से शरीफ बच्चों की तरह साफ कपड़े पहनकर आया करो, नहीं तो कक्षा में घुसने नहीं दूंगा, आया समझ में।" कक्षा में घुटने टेक खड़ा कल्लू सोचता रहा वह भी तो चाहता है कि अन्य बच्चों की तरह साफ कपड़े पहनकर स्कूल आया करे। मगर सिर्फ पानी से तो कपड़े धोये नहीं जा सकते ? कपड़े धोने के लिये साबुन चाहिये, और साबुन तो कभी-कभी ही खरीदा जा सकता है।

धीरे-धीरे दिन गुजरते गए समय के साथ ही हालात की तस्वीर साफ होती गयी। कल्लू को पता लगा कि वह जिस मोहल्ले में रहता है, वह "शरीफों" का मोहल्ला नहीं है। उसे यह भी पता लगा कि माँ जहाँ बरतन साफ करने जाती है वह शरीफ लोगों का मोहल्ला है। दो-तीन साल पढ़ने के बाद ही उसके जैसे परिवारों से स्कूल पढ़ने आने वाले लड़कों ने पढ़ना छोड़ दिया। उसे कक्षा में एक दिन मास्टरजी के मुंह से यह भी सुनने को मिला कि "शरीफ" घर के बच्चे ही पढ़ाई में अव्वल होते हैं। कल्लू के बाल मन में इन विकृत धारणाओं की काली परछाई स्थिर होकर रह गई, और कक्षा का अव्वल छात्र कल्लू पढ़ाई में पिछड़ने लगा। अनुभवों ने उसकी धारणा को पुख्ता किया। और इसका जो परिणाम हुआ, उस पर दुनिया को कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिये कि कल्लू बड़ा होकर "शरीफ" आदमी नहीं बन सका।

कहानी वाटरलेंस प्रोजेक्टर बनाने की

उमेशचन्द्र चौहान,
टिमरनी

3 जून 1968 की शाम मैं अपने घर पर पुस्तक के पन्ने पलट रहा था। किसी व्यक्ति ने मुझे आवाज दी "उमेश तुम्हें लक्ष्मी टाकीज में आपरेटर मंगू ने बुलाया है।" मैंने पुस्तक रखी और उठकर सिनेमा पहुँचा। पता चला नयी फिल्म लगी है, बोर्ड बनाना है। बोर्ड बनाकर लौट ही रहा था कि आपरेटर ने मुझे कहा—इस कांच की स्लाइड पर "मध्यान्तर" लिखकर ले आना। मैने पूछा—कैसे ? तब उन्होंने कहा— गेरू या खड़िया मिट्टी के घोल का एक पतला कोट इस पर कर देना, जब वह सूख जावे तब कील से खरोंच कर मध्यान्तर लिख देना।

घर जाकर मैंने वैसा ही किया। कांच की स्लाइड पर मध्यान्तर लिखने के बाद जब मैने दीपक के सामने उस स्लाइड को रखा तो मुझे दीवार पर बडे बड़े अक्षरों में मध्यान्तर लिखा हुआ दिखाई दिया। मैं काफी प्रसन्न हुआ। प्रकाश अधिक तेज न होने से अक्षर कुछ धुँधले दिखाई पड़ रहे थे। दीपक के पीछे मैंने समतल दर्पण रखकर पुन: देखा, इस बार अक्षर कुछ स्पष्ट दिखाई दिये।

कांच की स्लाइड पर लिखे "मध्यान्तर" को सिनेमा के पर्दे पर देखने की मेरी अभिलाषा बढ़ी। मैं दौड़ते हुए सिनेमा पहुँचा। कुछ ही देर पहले मध्यान्तर हुआ था अत: मैं सीधा मशीन कक्ष में पहुँचा और आपरेटर को मध्यान्तर लिखी हुई स्लाइड दी। आपरेटर ने उसी समय स्लाइड को पर्दे पर दिखाया मेरी खुशी की सीमा न रही, मैं उस मशीन को गौर से देख रहा था, जिसमें स्लाइड लगी थी। मैंने आपरेटर से पूछा-स्लाइड के आगे क्या लगा है ? उसने बताया-लेंस लगा हुआ है। लेंस से मैं परिचित था किन्तु समस्या थी कि लेंस कहाँ से लाऊँ।

उन दिनों मैं बिजली के फ्यूज बल्बों पर पेंटिंग भी किया करता था। पेंटिंग किये बल्बों को धागे में लटका कर अपना घर सजाया करता था। एक दिन विचार आया कि फ्यूज बल्ब का फिलामेंट निकालकर उसमें रंगीन पानी भरूं और फिर उस पर पेंटिंग करूं तो ज्यादा सुन्दर लगेगा। मैं पड़ौसी के यहां से एक फ्यूज बल्ब मांग लाया। बल्ब का फिलामेंट निकाला। बल्ब कुछ गंदा था। अत: मैंने उस पर पानी डाला। कुछ पानी बल्ब के भीतर चला गया। अचानक मैंने देखा बल्ब के पानी में से मेरे हाथ की ऊँगलियाँ मोटी-मोटी दिखाई दे रही हैं। मैंने सोचा यह कैसे हुआ। जब मैंने बल्ब को पूरा पानी से भरा तो मेरी ऊँगलियाँ काफी मोटी-मोटी दिखाई दी। मैं फौरन घर के भीतर दौड़ा और लालटेन जलायी, और एक काँच के टुकड़े पर गेरू लगाकर स्लाइड बनाई।

अब मैंने लालटेन को तीन तरफ से कागज से ढक दिया और उसके सामने पानी से भरा बल्ब रखा। मैंने देखा पूरे बल्ब में से समान रूप से तेज प्रकाश निकल रहा है।

मैंने इस बार लालटेन के सामने स्लाइड रखी और स्लाइड के सामने पानी से भरा बल्ब रखा। दीवार पर मुझे कोई विशेष अन्तर अक्षरों में देखने को नहीं मिला। प्रकाश पहले की अपेक्षा अधिक गहरा अवश्य था। मेरे मन में विचार आया कि अब लेंस अवश्य ही लगाना पड़ेगा। संयोग से उसी दिन गांव से पिताजी आये। वे अपना टूटा हुआ चश्मा वहीं छोड़ गये थे। मैंने उस चश्मे के लेंस का उपयोग किया। उसी प्रयोग को फिर से दुहराने में काफी माथापच्ची करनी पड़ी। अन्त में जब मैंने क्रमश: लालटेन, पानी से भरा बल्ब, स्लाइड और फिर लेंस को व्यवस्थित किया, तो मैंने देखा इस बार दीवार पर स्लाइड के अक्षर पहले की अपेक्षा कई गुना बड़े दिखाई दिये। जैसे-जैसे मैं इन सबको दीवार से दूर हटाकर व्यवस्थित करता अक्षर और बड़े होते जाते, किन्तु प्रकाश धुंधला होता जाता था।

प्रकाश तेज करने के लिये मैंने पड़ौसी के यहां बिजली के बल्ब के प्रकाश में यही प्रयोग दुहराया तो स्लाइड के अक्षर कई गुना बड़े और तेज दिखे। मेरी प्रसन्नता चरम सीमा पर थी। मैंने मन ही मन कहा कि अब मैं भी सिनेमा जैसी स्लाइड दिखा सकता हूं। मेरे उत्साह ने उस व्यवस्था को "वाटर लेंस प्रोजेक्टर" नाम दिलाया। इसे आप भी बना सकते हैं।

प्रोजेक्टर बनाने हेतु आवश्यक सामग्री :

1. लकड़ी का डिब्बा (15 से. मी. लंबा, 9 से. मी. ऊंचा, 7 से. मी. चौड़ा)

2. 100 वाट का एक बल्ब एवं एक फिलामेंट निकाल हुआ फ्यूज बल्ब

3. कांच की स्लाइड (8 से. मी × 4 से. मी.) आवश्यकतानुसार

4. पुस्ठा, (7 से. मी. × 15 से. मी. 7 से. मी. × 9 से. मी.)

5. गेरू या खड़िया मिट्टी, कीलें, सिगरेट पैकिट की चमकदार पन्नी या एल्यु-मिनेट पेपर, पतला तार (आवश्यकतानुसार)

6. गोंद या लेही,

7. बिजली का वायर, स्विच, होल्डर वगैरा

वाटरलेंस प्रोजेक्टर बनाने की विधि

एक लकड़ी का डिब्बा (उपरोक्त साइज का) लो, उसके चौड़ाई वाले भाग का एक पटिया निकाल दो (चित्र 1)। डिब्बे के

भीतरी भाग में सिगरेट के पैकिट वाली चमकदार पन्नी या एल्युमिनेट पेपर चिपका दो।

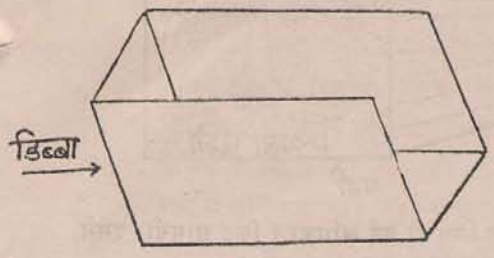

(चित्र 1)

यह पन्नी प्रकाश का परिवर्तन भी करेगी एवं लकड़ी का डिब्बा बल्ब की उष्मा से जलने भी न पायेगा।

अब एक कागज का पुस्ठा 15 से. मी. से कुछ छोटा) लो जो डिब्बे के भीतर फंस सके। इस पुस्ठे में दो ऐसे छेद करो जिसमें

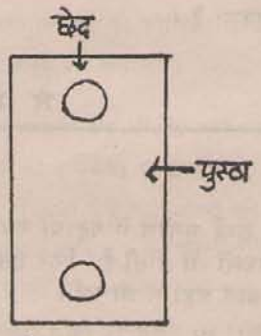

(चित्र 2)

बल्ब का एल्यूमिनियम वाला भाग ऊपर निकल सके। पुस्ठे के निचले भाग में चमकदार कागज चिपका दो। फिलामेंट निकले फ्यूज बल्ब को डिब्बे के खुले भाग की तरफ तथा चालू बल्ब को डिब्बे के भीतरी

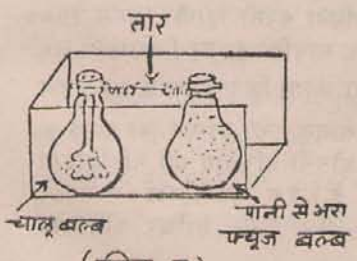

(चित्र 3)

भाग की ओर रखो, दोनों बल्बों के ऊपरी भाग पतले तार से कस दो। ऐसा करने से बल्ब एक दूसरे को स्पर्श न करेंगे और स्थिर भी रहेंगे। फिलामेंट निकले फ्यूज बल्ब में गोल भाग तक पानी भरो। डिब्बे के खुले भाग में एक पुस्ठा (9 × 7 से. मी.) चिपकाओ। पुस्ठे में बल्ब के गोल भाग के आकार का छेद हो। (चित्र 3) इस पुस्ठे को

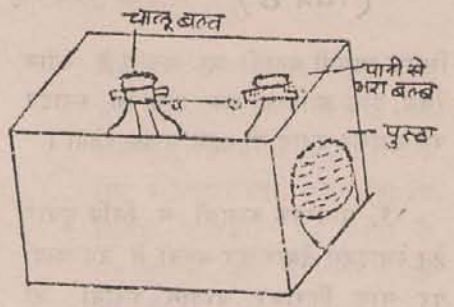

(चित्र 4)

लगाने से अनावश्यक प्रकाश रुक जावेगा। चालू बल्ब में विद्युत तार जोड़कर स्विच चालू करो, बस आपका प्रोजेक्टर तैयार हो गया।

स्लाइड बनाना :—

कांच की (4 से. मी. × 8 से. मी.) पट्टियों पर गेरू या खड़िया मिट्टी का पतला घोल एक बार पोत दें। गेरू या खड़िया में थोड़ी सी गोंद मिला लें। स्लाइड को सुखा लें। सूखने पर जो आकृति आपको बनाना हो वैसी कील से या सुई से स्लाइड पर खरोंच दें। स्लाइड तैयार हो जावेगी। इस स्लाइड को रंगीन बनाने के लिये गेरू लगे भाग के दूसरी ओर जिलेटिन पेपर चिपका दें।

कांच की स्लाइड

(चित्र 5)

स्लाइड के स्टैंड के लिए पुस्ठे के (3 से. मी. × 8 से. मी. के) एक टुकड़े पर

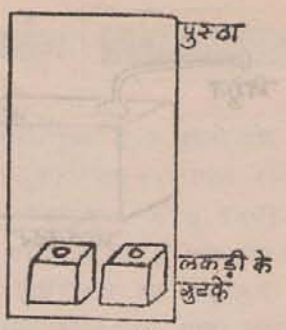

स्लाइड स्टेंड

(चित्र 6)

दो लकड़ी के [1 से. मी. × 1 से. मी. × 1 से.मी. के] घनाकार टुकड़े इस प्रकार कील से लगायें कि उन के बीच कांच की स्लाइड फंस सकें।

लेंस का स्टैंड बनाना :—

एक पुस्ठे के टुकड़े [3 से. मी. × 8 से. मी.] पर 4 से.मी. लंबी एक लकड़ी का टुकड़ा कील से लगा दो। इस लकड़ी के टुकड़े पर रबर बैंड की सहायता से हैंड लेंस को लगा दो।

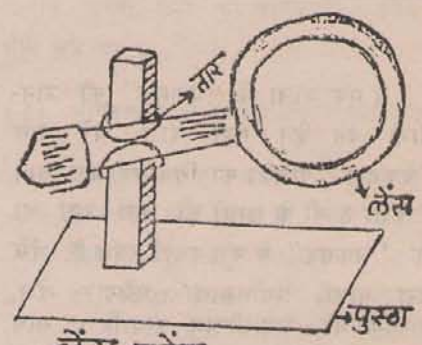

लेंस स्टेंड

(चित्र 7)

चित्र 8 में बताये अनुसार पूरे प्रोजेक्टर को जमाओ। स्लाइड स्टैंड में उल्टी करके स्लाइड लगायें। चित्र सीधा पर्दे पर बनेगा। बल्ब का स्विच चालू कर हैंड लेंस को आगे पीछे हटाकर पर्दे पर फोकस करें। एक के बाद एक स्लाइड बदलें और अपने, मित्रों और भाई-बहनों को प्रोजेक्टर से सिनेमा दिखायें।

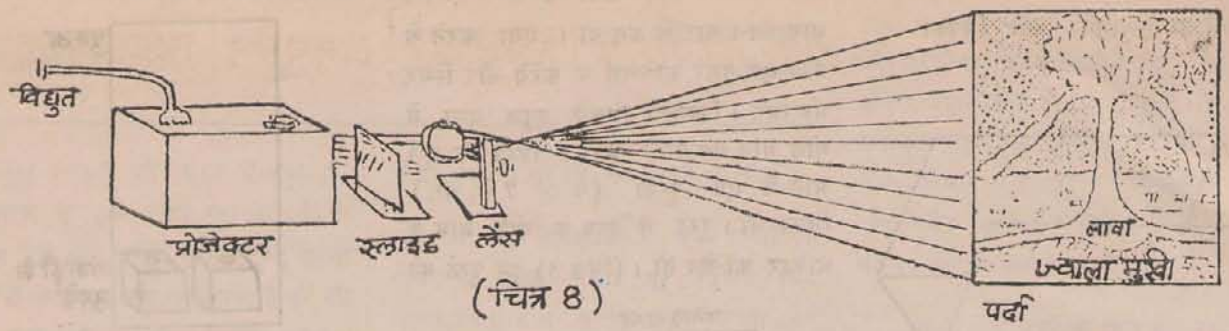

(चित्र 8)

प्रोजेक्टर की विशेषताएँ :—

1. पानी से भरा फ्यूज बल्ब कंडेन्सर का कार्य करता है। इससे दो समतल उत्तल लेंसों की बचत होती है।

2. कम से कम खर्च में तैयार हो जाता है।

3. एक स्लाइड बनाकर इसकी सहायता से आवश्यकतानुसार छोटे, बड़े कई नक्शे, चार्ट, चित्र आदि को कार्ड, शीट पर सही सही उतारा जा सकता है।

4. एक बहुत सुन्दर और रुचिकर शिक्षण सामग्री बनायी जा सकती है रंगीन चित्र, दृश्य आदि को एक साधारण स्लाइड पर बनाकर बतावें तो बहुत अच्छा रहेगा।

5. प्राथमिक कक्षाओं में लिपि सुधार हेतु स्लाइड्स तैयार कर बच्चों से उन शब्दों पर चाक फिराकर अभ्यास कराया जा सकता है।

6. रात्रि में प्रौढ़ शिक्षा वालों को श्यामपट पर या दीवार पर स्लाइड पर लिखे अक्षरों द्वारा शिक्षा दी जा सकती है।

7. वर्तमान "बाल वैज्ञानिक" पुस्तक के के लिए दी गई अधिकांश किट सामग्री इससे उपयोग में लाई जा सकती है।

8. प्रोजेक्टर में अधिक वोल्टेज का बल्ब लगाकर बड़े से बड़ा चित्र दीवार या पर्दे पर दिखाया जा सकता है।

9. विशेषता यह है कि सिनेमा की फिल्म का भी स्पष्ट चित्र करीब-करीब 1 मी. चौड़ा × 1 मी. लम्बा दिखाई पड़ता है। बल्ब की प्रकाश क्षमता पर यह आकार और बड़ा हो सकता है।

★ ★

स्कूली शिक्षा की सार्थकता

मैं एक शाला में "चकमक" की जानकारी देने हेतु गया था। मेरे पास "चकमक" पत्रिका का सितम्बर अंक था। मैं कक्षा 8 वीं के छात्रों को बता रहा था कि 'चकमक" में कुछ स्थाई स्तंभ हैं, जैसे मेरा पन्ना, प्रयोगशाला, मजेदार खेल, माथा-पच्ची, सवालीराम इत्यादि। साथ ही साथ एक-दो मुख्य कहानी या लेख होते हैं। इस अंक में "बरसात कहां गई" नामक लेख है। मैंने बच्चों से कहा, इस वर्ष मालवा में पानी बहुत कम गिरा है वह भी बहुत देरी से। आखिर पानी कैसे गिरता है एवं कौन गिराता है ? कई बच्चों ने हाथ ऊपर किये। एक ने कहा, भगवान पानी गिराता है, एक अन्य बच्चा बोला, पानी तो बादल गिराता है। फिर कई बच्चे एक साथ बोल रहे थे। कोई कहता, पानी तो भगवान गिराता है, कई कह रहे थे, पानी तो बादल गिराता है। फिर मैंने पूछा, अच्छा बताइये बादल में पानी कहां से आता है ? इस पर एक बच्चे ने कहा, भाप से। फिर पूछा, भाप कैसे बनती है ? इस तरह इसी क्रम में कई और प्रश्न पूछे। प्रश्नोत्तर से स्पष्ट हो गया कि पानी कैसे गिरता है, बादल कैसे बनते हैं एवं पानी कैसे बरसाते हैं ? फिर मैंने पूछा कि, शुरू में कुछ बच्चे कह रहे थे कि पानी इन्द्र देवता बरसाता है। इनका क्या तर्क है ? इस पर कक्षा में एकदम चुप्पी छा गई। फिर एक बच्चा बोला, कि इस बार जब पानी नहीं बरस रहा था हमारे घर एवं मोहल्ले में बड़े-बूढ़े सभी बोलते थे कि लोग पाप ज्यादा करने लगे हैं, इससे इन्द्र देवता नाराज हैं। अत: बरसात नहीं हो रही है। किसी ने कहा, कोई देवी नाराज है अत: पानी नहीं बरस रहा है। **इस पर कक्षा शिक्षक ने कहा, तुम्हें भूगोल में पढ़ाया गया है कि बरसात बादलों से होती है फिर इसमें देवी-देवता की बात कहां से आ गई।**

मैं सोचता था हमारी स्कूल शिक्षा का बच्चों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव क्यों नहीं पड़ता। इससे एक बात बहुत स्पष्ट हो जाती है कि यदि बच्चों में वैज्ञानिक मानसिकता का विकास करना है तो स्कूली शिक्षा एवं व्यवस्था में तो परिवर्तन करना ही पड़ेगा, साथ ही साथ समाज में युवा एवं प्रौढ़ व्यक्तियों के साथ भी ऐसी प्रक्रियाएं एवं गतिविधियां करनी होंगी जिससे उनमें भी वैज्ञानिक मानसिकता का विकास हो सके वरना पहला प्रयास कितना सार्थक एवं सफल रहेगा ? समाज के व्यापक जन समूह के साथ ऐसी कौनसी प्रक्रियाएं एवं गतिविधियाँ हो सकतीं हैं। इस पर गहराई से सोचने एवं ठोस काम करने आखिर कौन लोग आयेंगे ?

रामनारायण स्याग, देवास

विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम अनुवर्तन

संगम केन्द्र से

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में पाठ्यक्रम और पद्धति बदलने के साथ-साथ कुछ नई शैक्षिक प्रक्रियाऐं भी शुरू की गई हैं। इस बात में कोई शक नहीं कि शैक्षिक क्रियाओं का अपना महत्व है। कार्यक्रम के प्रारंभिक दिनों में इनका लाभ भी हो. वि. शि. का. को मिला है। परन्तु कालान्तर में ये प्रक्रियाऐं भोथरी होती जा रही हैं। जैसे-जैसे अनुवर्तन कार्य में नीरसता आना, होशंगाबाद विज्ञान प्रशिक्षण हेतु ऐसे शिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना जिनकी विज्ञान में रुचि न होना, मासिक गोष्ठियों में उपस्थित न होना, बैठक में सक्रिय सह-भागिता न करना, प्रयोग शिक्षक द्वारा करना, छात्रों की टोलियां न बनवाना और न प्रयोग ही कराना।

अपेक्षा यह थी कि मासिक गोष्ठियों में कक्षा के अनुभवों से उभरे नये विचार नयी उपलब्धियों एवं समस्याओं की चर्चा होगी। अनुवर्तनकर्ता एवं अनुवर्तन प्रतिवेदन मासिक गोष्ठियों के माध्यम से इस कार्यक्रम में निरन्तर निखार लाने का प्रयास करेंगे। किन्तु क्या हम करनी और कथनी की उस खाई को कभी पाट पायेंगे ? या खाई के के किनारे से ही हवाई कल्पनायें करते रहेंगे।

संगम केन्द्रों के प्रतिवेदनों से कुछ मुद्दे उभरकर जरूर आये हैं कि कौन से वे कारक हैं जो इस कार्यक्रम को गति प्रदान करने में अवरोधक बने हुए हैं ?

टिमरनी संगम केन्द्र के मासिक गोष्ठी प्रतिवेदनों का अध्ययन किया गया है कि प्रशासनिक तंत्र पहले इन अवरोधों के लिए जिम्मेदार है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

जिले में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षा कार्यक्रम की गतिविधियों में सहयोग करने एवं देख रेख के उद्देश्य से 11 संगम केन्द्र बनाए गए थे। इन संगम केन्द्रों के माध्यम से संगम केन्द्र के अन्तर्गत आने वाली माध्यमिक शालाओं में :—

- विज्ञान प्रशिक्षित शिक्षकों की आवश्यकता पता **करना, नए शिक्षकों को प्रशिक्षित** आवश्यकता पता कराने के लिए प्रस्ताव भेजना, यह देखना कि शिक्षक कक्षाओं, की संख्या के अनुपात में कम या अधिक तो नहीं हैं ?
- प्रशिक्षित शिक्षक विज्ञान पढ़ा रहे हैं अथवा नहीं ? इनकी जानकारी विभाग को देना ?
- विज्ञान अनुवर्तन व्यवस्था, किट क्षतिपूर्ति करना ?
- किट की जानकारी प्राप्त करना ?
- मासिक बैठक आयोजित कराना एवं कठिनाईयों को संगम केन्द्र स्तर पर हल करना या आगे विभाग को इनकी सूचना भेजना ?

पिछले कुछ वर्षों से विभाग द्वारा न तो संगम केन्द्र के पत्रों पर ध्यान दिया जाता है और न ही पत्रों पर कोई कार्यवाही ही की जाती है। इस प्रकार संगम केन्द्र द्वारा विज्ञान शिक्षण के लिये किये जाने वाले प्रयासों पर गहरा आघात किया जा रहा है। यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं। जिनसे विभाग को सूचित किया गया किन्तु उन पर कोई कार्यवाही नहीं की गई।

विज्ञान शिक्षकों के स्थानान्तर :

एक तरफशिक्षा विभाग विज्ञान शिक्षकों के लिए संभा. शि. अधि. होश. के अनुमोदन के बिना स्थानांतरित न किये जाने के लिए आदेश कर चुका है। दूसरी ओर बिना शिक्षक सन्तुलन बनाए स्थानान्तर होते जा रहे हैं। न संगम केन्द्र को ही इसकी जानकारी दी गई है, और न ही संभागीय शिक्षा अधीक्षक होशंगाबाद का अनुमोदन लिया गया। समय-समय पर इसकी जानकारी विभाग से मांगी गई पर आज तक जानकारी नहीं मिली। उदाहरणार्थ–

(1) श्री जगदीश प्रसाद तिवारी धौलपुर मा. शाला–से न. पा. मा. शा. टिमरनी स्थानान्तरित हो चुके हैं जब कि इस शाला में विज्ञान शिक्षक पर्याप्त हैं। इसके विपरीत मा. शा. धौलपुर में गत 2 वर्षों से विज्ञान की पढ़ाई कक्षा आठवीं में विज्ञान शिक्षक न होने से ठप्प है। इस वर्ष क्या होगा ?

"इस स्थानान्तरण के आदेश क्र.-एवं दिनांक संगम केन्द्र की जानकारी के लिए नहीं भेजे गए।

(2) आवश्यकता से अधिक विज्ञान शिक्षक:

श्री हरनार्थसिह चौहान–भादूगांव से करताना मा. शा. में स्थानांतरित किए गए हैं, जबकि करताना मा. शा. में 3 विज्ञान शिक्षक पहले ही उपलब्ध थे। अब वहां चारो ही विज्ञान शिक्षक हैं। करताना नजदीक की मा. शा. नयागांव में विज्ञान शिक्षक की मांग को लेकर हड़ताल तक हो चुकी है। क्या विभाग ने संगम केन्द्र के पत्र पर ध्यान दिया ?

(3) प्राथमिक शाला में प्रशिक्षित विज्ञान शिक्षक-"अनुपयोगी"
बिच्छापुर मा. शा. के श्री मदनसिह पवार पूर्ण प्रशिक्षित विज्ञान शिक्षक थे जिन्हें प्राथमिक शाला बघवाड़ में

स्थानांतरित कर दिया गया है ? यह किस समझ के आधार पर किया गया ? श्री मदनसिंह के विज्ञान प्रशिक्षण की इस शाला में क्या उपयोगिता है ?

विज्ञान शिक्षक से शिक्षण न कराते हुये अन्य कार्य :

[नयागांव के] विज्ञान शिक्षक श्री शिवराम खले जो अब स्टे. टिमरनी मा. शाला में कार्यरत हैं। इन्हें 1 जुलाई 83 से 13-12-83 तक अटैच किया गया। इस अवधि में नयागांव में विज्ञान शिक्षण बुरी तरह प्रभावित हुआ। कई बार प्रधान पाठक से शिकायत पत्र मिले। श्री खले द्वारा किए गए कार्य का लेखा विवरण इस प्रकार हैं :

1-7-83 से 15-7-83 तक स. जि. शाला निरीक्षक कार्यालय में प्राथमिक प्रमाण पत्र परीक्षा में संलग्न रहे।

16-7-83 से 15-9-83 तक चिकित्सा अवकाश।

16-9-83 से 13-10-83 तक स. जि. शाला निरी. कार्यालय में विधान सभा कार्य से संलग्न।

14-10-83 से 6-11-83 दशहरा दीपावली अवकाश।

7-11-83 से 13-12-83 तक जि. शि. अधी. होशंगाबाद के कार्यालय में डाक कार्य किया।

उपरोक्त अवधि में श्री खले को किसके आदेश से अटैच किया गया था। आदेश क्रं. एवं दिनांक की जानकारी शाला संगम केन्द्र के पत्र क्रमांक-पी/22/दिनांक 27-2-84 के द्वारा माँगी गई थी। स्मरण पत्र भी भेजे गए परन्तु आज तक इसका कोई उत्तर संगम केन्द्र को नहीं दिया गया।

क्या विज्ञान शिक्षक ही इस कार्य को 20-25 कि. मी. दूर की शाला से आकर कर सकता था ?" क्या स्थानीय शाला से या अन्य शिक्षकों से यह कार्य नहीं कराया जा सकता था ? इस प्रकार अनेक ऐसे उदाहरण हैं, जिनकी उपेक्षा की गई है ।

"क्या विभाग द्वारा संगम केन्द्र के इन पत्रों पर पुनः ध्यान दिया जाएगा ?"

मासिक बैठक :

मासिक बैठकों के प्रतिवेदनों के साथ संगम केन्द्र टिमरनी से यह जानकारी भेजी जाती रही है कि अमुक अनुवर्तक मासिक गोष्ठियों में उपस्थित नहीं होते हैं। किन्तु कभी-कभार अनुवर्तन रिपोर्ट भेज दिया करते हैं। विभाग ने आज तक ऐसे अनुवर्तनकर्त्ताओं से यह तक नहीं पूछा कि उन्होंने अनुवर्तन क्यों नहीं किया ?

स्टेशन मा. शाला टिमरनी के दो अनुवर्तनकर्त्ताओं ने गत वर्ष 85 में एक भी अनुवर्तन नहीं किया। इस वर्ष मासिक गोष्ठियों में भी उपस्थित नहीं हुए। मात्र सूचना भेजते हैं कि स्वास्थ्य खराब है। क्या वे उक्त दिनांक को स्वास्थ्य खराबी के कारण अवकाश पर रहे ? यदि नहीं तब यह सीधा शासकीय आदेश को पालन न करनी ही है।

अनेक अनुवर्तनकर्त्ता ऐसे भी हैं जो कभी-कभी या 2 अनुवर्तन वर्ष भर में करते है, जिससे उनके अनुवर्तन हेतु दी गई शाला की जानकारी अपूर्ण या निरंक होती है। इस संबंध में विभाग को सूचना गत वर्ष भेज दी गई है।

समय पर जानकारी नहीं भेजना :

मा. शा. से अनेक बार संगम केन्द्र को भेजी जाने वाली जानकारी समय पर नहीं भेजी गई है। अतः कार्य में अकारण ही विलंब हुआ है।

जैसे, क्षति-पूर्ति सूची समय पर नहीं भेजना। गोपनीय कार्य में उपस्थित न होने की सूचना निर्धारित समय में नहीं भेजना। इस कारण से कार्य में बहुत परेशानी हुई है।

सभी अंश संगम केन्द्र से भेजे गए पत्रों से लिए गए हैं।

प्राचार्य

राधास्वामी उ. मा. शा. टिमरनी

किट का अभाव, परीक्षा पर प्रभाव

15 से 18 मार्च, 86 के बीच विज्ञान प्रायोगिक परीक्षा होशंगाबाद संभाग में सम्पन्न हुई। परीक्षा की तैयारी प्रश्न पत्र निर्माण कराने से लेकर उत्तर पुस्तिकाओं के मूल्यांकन और उनके परीक्षा फल बनाने तक युद्ध स्तर पर की गई। जो काफी थी।

किन्तु, क्या इस काल्पनिक व्यवस्था से प्रायोगिक परीक्षा आप जैसी सोच रहे होंगे वैसी सम्पन्न हो पाई होगी ? शायद नहीं। कारण यह है कि माध्यमिक शालाओं में प्रमुख किट सामग्री या तो थी ही नहीं, या फिर आवश्यकता से बहुत कम थी। जैसे- परखनली, उफननली, ड्रापर, टार्च बल्ब, अम्ल, लिटमस पेपर, सूचक घोल एवं अन्य जरुरी रसायनों के अभाव में रासायनिक प्रयोग कराना संभव ही नहीं हैं। फिर दूसरी बात, 83 के बाद से अभी तक किट क्षति-पूर्ति भी नहीं हुई। तब यह कैसे संभव है कि उस समय दिये गए चुम्बक, हेंडलैंस, चिमनी, अप्लावी बर्तन, बाँट, काँट के बीकर और नपनाघट आदि बढ़ती दर्ज संख्या के बाद भी पर्याप्त मात्रा में शालाओं में होंगे ही ? जबकि बिना किट के अनेक शालाओं में कई महत्वपूर्ण प्रयोग कराए ही नहीं गए हैं। या फिर मात्र उनकी प्रदर्शनी हुई है ! अनुवर्तनकर्ताओं द्वारा भी समय-समय पर दी गई जानकारी से बात की पुष्टि होती है।

इन हालातों में प्रायोगिक परीक्षा के नाम पर एक मखौल के सिवाय और क्या हुआ होगा ? ★★

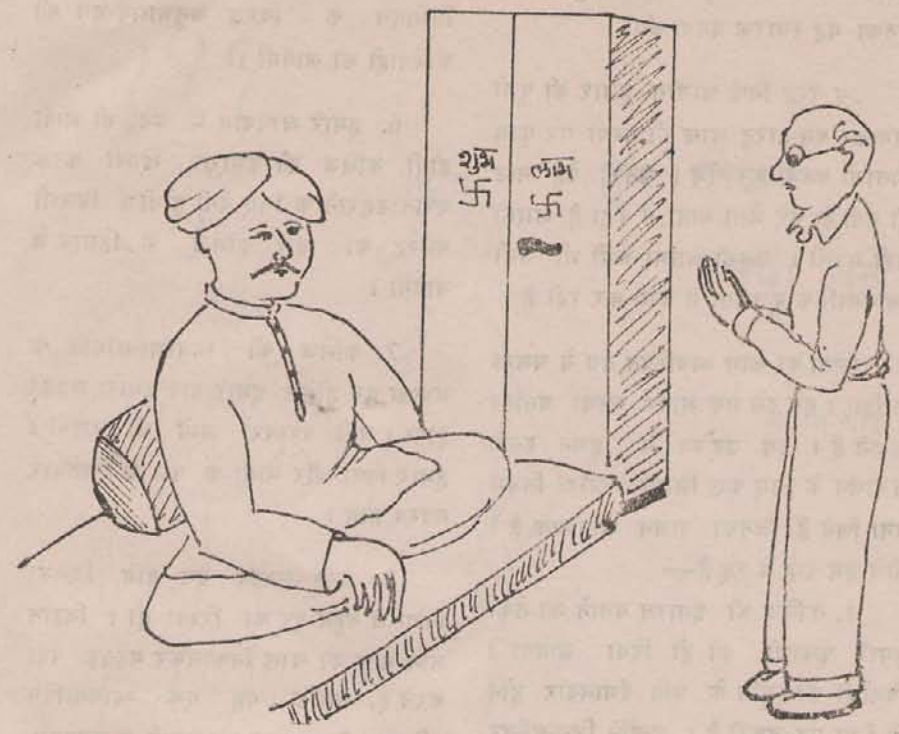

प्राइवेट कालेज का घोषणा–पत्र

हरिशंकर परसाई

[एक 'पार्टी' कालेज की स्थापना कर रही है। उसका एक घोषणा-पत्र अखबारों में छप चुका है। पर हिसाब की तरह, उस पार्टी ने घोषणा-पत्र भी दो बनाये थे। दूसरा, 'प्राइवेट घोषणा-पत्र' सच्चे हिसाब की बही में दबा हुआ था। उसकी नकल यहां दे रहा हूँ। –लेखक]

॥ श्री लक्ष्मीजी सदा सहाय ॥

हम फार्म बाबूलाल छोटेलाल के वर्तमान मालिक अपनी प्रसिद्ध फर्म की नयी शाखा खोल रहे हैं।

इस शाखा का नाम 'गोवरधनदास' कालेज होगा।

जैसा कि विश्व-विदित है, गोवरधनदास हमारे पूज्य पिता थे। वे अब इस असार संसार में नहीं हैं, जिससे हमारी फर्म के सिवा बाकी सब निस्सार है।

हम जानते हैं कि शिक्षा के धन्धे में उतना फायदा नहीं है, जितना सीमेन्ट या चीनी के धन्धे में। इसलिए शिक्षा की एक दूकान खोलना, व्यापारी भाई हमारी बेवकूफी ही समझेंगे। वे कहेंगे कि कॉलिज क्यों खोलते हो? उसी पैसे से चिनी का स्टाक क्यों नहीं भर लेते?

उनका कहना भी ठीक है। पर हम थोड़ी दार्शनिक भावना भी रखते हैं। नर-देह चौरासी कोटि योनियों के बाद मिलती है– ऐसा कथा में भी आता है। इसलिए जीवन में स्वार्थ और परामार्थ दोनों साधने चाहिए। परमार्थ क्या है? कोई ऐसा काम करना, जिससे लोग हमें दानी, त्यागी और समाज-सेवक समझें। इससे यश बढ़ता है। यश ही परामार्थ है। हमें एक काम ऐसा जरूर करना चाहिए, जिससे नाम अमर रहे।

हमारे दिवंगत पिताजी की अमर होने की बड़ी लालसा थी। पर वे अपने जीवन-काल में इसका प्रबन्ध नहीं कर सके, क्योंकि वे फर्म के काम में हमेशा व्यस्त रहे। यह भार अब हमारे सिर पर है। हम पिताजी को अमर करना चाहते हैं। पहले हम हर गर्मी में प्याऊ खुलवा देते थे। लोग स्टेशन के पास के चौराहे की 'श्री गोवरधनदास प्याऊ' को भूले न होंगे। पर हमने देखा कि प्याऊ से स्वर्गीय पिताजी का नाम सिर्फ गर्मी के महीनों में ही जीवित रहता है। बाकी दस महीने वे भुला दिये जाते हैं। जो गर्मी में रोज हमारी प्याऊ का पानी पीकर जिन्दा रहते हैं, वे भी सर्दियों में याद नहीं रखते कि वैशाख में हमारे पिताजी ने उन पर अहसान किया था। लोग बड़े कृतघ्न हैं।

प्याऊ से पिताजी बारहों महीने और सैकड़ों साल अमर नहीं रह सकते, यद्यपि इसमें खर्च कम बैठता है। पर किफायत से कहीं अमरता मिली है! हमने सोचा कि उनके नाम से एक धर्मशाला बनवा दें। जब तक इमारत रहेगी, तब तक तो उनका नाम रहेगा ही। अगर कालान्तर में जमीन में समा गयी, तो भविष्य के पुरातत्वेत्ता उसे खोद निकालेंगे और पिताजी का नाम हमेशा के लिए इतिहास में चला जायेगा। पर कुछ सयानों ने समझाया कि समाजवाद का बड़ा हल्ला हो रहा है। आगे जमाना खराब आ रहा है। अगर समाजवाद हो गया, तो कोई दीन-दुखी या भिखारी नहीं रहेगा। तब तुम्हारी धर्मशाला में ठहरेगा कौन? और कौन तुम्हारे पिताजी का नाम स्मरण करेगा?

आखिर बहुत सोच-विचार के बाद हमने कालेज खोलने का निश्चय किया है।

कालेज खोलने से हमारे परिवार पर लगा एक कलंक भी मिट जायेगा। हमारे पूज्य पिताजी पढ़े-लिखे नहीं थे। यह बड़े शर्म की बात है कि जिसने इस फर्म का इतना विकास किया, वह बेपढ़ा था। पर जब आगामी पीढ़ियाँ उनके नाम का कालेज देखेंगी, तो यही समझेंगी कि गोवरधनदास बीसवीं सदी शताब्दी के कोई महान् विद्वान या शिक्षा-शास्त्री रहे होंगे। तभी तो उनके नाम से लोगों ने कॉलेज खोला था। यह लाभ धर्मशाला या अनाथालय से नहीं मिल सकता था।

इस कॉलेज की स्थापना के लिए हमने एक लाख रुपयों का दान किया है। यह रहस्य कम लोग ही समझेंगे कि वास्तव में हमारी गाँठ से चालीस हजार ही गये हैं। साठ हजार तो इनकम-टैक्स के यों भी जाते। चालीस हजार में एक लाख के दान का श्रेय खरीद लेना, हमारे पिताजी की स्मृति के अनुकूल ही हुआ।

हम दूसरे व्यापारी भाइयों के पास गये और उनसे कहा कि हमारे पिताजी को अमर बनाने के कार्य में आप लोग भी मदद दें। उन्होंने भी सहर्ष पैसा दिया, क्योंकि आज हमारे पिता का काम अटका है, तो कल उनके बाप का अटक सकता है।

इस तरह तीन लाख रुपये इकट्ठे करके हम शिक्षा-मन्त्री के पास गये। शिक्षा-मन्त्री के प्रपितामह हमारे प्रपितामह की दूकान पर मुनीम थे। जब वे इस सम्बन्ध को भूलने लगते हैं, तब हम उन्हें याद दिला देते हैं। पिछले चुनाव में हमने अपनी जाति के सब वोट शिक्षा-मन्त्री को दिला दिये थे। हमने उनके सामने पिताजी को अमर बनाने की योजना रखकर कहा कि इसमें कुछ रुपये घटते हैं। शिक्षा-मन्त्री ने कहा कि वे तो मेरे भी पिता तुल्य थे। मुझे फिर उसी क्षेत्र से चुनाव लड़ना है, इसलिए उनका आशीर्वाद चाहिए। मैं तो खुद उन्हें अमर करने की कोशिश में था और उनके नाम से एक विश्वविद्यालय खोलने का इरादा कर रहा था। आप अगर एक कॉलेज से ही सन्तुष्ट होते हैं, तो मैं सरकार की तरफ से आठ-दस लाख रुपये उनकी स्मृति में दे दूंगा और उनका यह स्मारक बनवा दूँगा।

इस तरह सिर्फ चालीस हजार की पूंजी लगाकर दस-बारह लाख की संस्था पर पूज्य पिताजी कब्जा कर लेंगे। उनकी देह नष्ट हो गयी है, पर जैसा गीता में कहा है, आत्मा नहीं मरती। उनकी आत्मा अभी भी उसी व्यावसायिक कुशलता से कार्य कर रही है।

संस्था का काम व्यवस्थित ढंग से चलना चाहिए। हम इसे एक आदर्श संस्था बनाना चाहते हैं। इस उद्देश्य से हमने इसके संचालन के लिए कुछ सिद्धान्त और नियम बना लिये हैं, जिनका पालन आवश्यक है। नीचे हम इन्हें दे रहे हैं--

1. कॉलेज की इमारत बनाने का ठेका हमारे फूफाजी को ही दिया जायेगा। पिताजी की स्मृति के प्रति ईमानदार होने के लिए यह जरूरी है। उन्होंने शिव-मन्दिर चन्दे से बनवाया था, जिसका ठेका फूफाजी को ही दिया गया था।

2. यदि सरकार इमारत के निर्माण में हस्तक्षेप करे और इसका ठेका शिक्षा-मन्त्री के साले को दे, तो भी चूना-सीमेंट की सप्लाई हमसे करवानी होगी।

3. जब यह इमारत बन रही हो, तब यदि हमारा भी कोई मकान निर्माण के पथ पर हो, तो उसके समान का उपयोग इसमें से हो सकता है, क्योंकि फर्म एक ही है।

4. जब तक हमारे मामाजी की स्टेशनरी की दूकान है, तब तक कॉलेज के लिए सारी स्टेशनरी उनकी दूकान से खरीदने पड़ेगी। पिताजी मामाजी को बहुत चाहते थे और उन्होंने ही यह दूकान खुलवा दी थी। यदि किसी दूकान से स्टेशनरी खरीदी गयी, तो पिताजी की आत्मा को क्लेश होगा।

5. बगीचे में आम, पपीता, कटहल आदि के वृक्ष लगाये जायेंगे और इनके फल हमारे घर भेजे जायेंगे। यह जिम्मेदारी प्रिंसिपल की होगी। इसमें भूल होने पर प्रिंसिपल के विरुद्ध अनुशासन-भंग की कार्यवाही की जायेगी।

6. हमारे खानदान में जब भी शादी होगी, कॉलेज की इमारत खाली करके बरात ठहराने के लिए देनी होगी। बिजली वगैरह का खर्च कॉलेज के हिसाब में जायेगा।

7. कॉलेज की व्यवस्था-समिति के अध्यक्ष हम होंगे। हमारे बाद हमारा लड़का होगा। यही परम्परा आगे भी चलेगी। हमारे पिता और माता के पक्ष के रिश्तेदार सदस्य होंगे।

8. अन्य सदस्य ऐसे होंगे, जिनका विद्या से बहुत दूर का रिश्ता हो। विद्वान लोग बाल की खाल निकालकर गड़बड़ पैदा करते हैं, क्योंकि यह एक व्यावसायिक प्रतिष्ठान है, इसलिए इसे चलाने में व्यापारी-वर्ग का अधिक हाथ रहेगा।

9. जैसा कि आरम्भ में ही घोषित कर दिया गया है, यह कॉलेज हमारी फर्म की एक शाखा है। इसलिए इसके प्रिंसिपल का दर्जा हमारी दूकान के हेड मुनीम के बराबर होगा और प्रोफेसर लोग मुनीम माने जायेंगे।

10. प्रिंसिपल को प्रतिदिन हमें दूकान पर 'जैरामजी की' करने आना पड़ेगा। जिस दिन वह न आयेगा, उस दिन का वेतन काट लिया जायेगा। अगर वह लगातार पन्द्रह दिनों तक नहीं आया, तो निकाल दिया जायेगा।

11. हर प्रोफेसर को हफ्ते में कम-से-कम एक बारे हमें "जैरामजी की" करने आना पड़ेगा। जो रोज आयेगा, उसके प्रिंसिपल बनने के चांस रहेंगे।

(शेष पृष्ठ 30 पर)

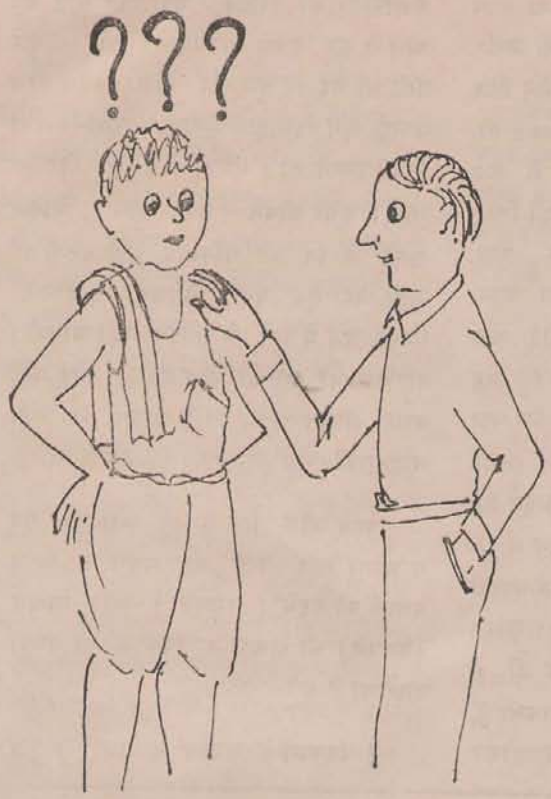

हम साक्षर क्यों बनें

सत्येन मोइज

हम गरीब हैं, बहुत ही गरीब ।

लेकिन हम मूर्ख नहीं हैं । इसलिये, निरक्षर होते हुये भी हम जी रहे हैं ।

साक्षर बनने के लिये हमने कोशिश की थी । साक्षरता केन्द्र में भर्ती भी हुये थे । लेकिन कुछ समय बाद लगा कि हम अधिक दुखी हुये हैं, हमारी समझदारी में बढ़ोत्तरी नहीं हुई है । इसलिये हमने केन्द्र में जाना छोड़ दिया । चूंकि हम अकलमंद हैं, हम सारा कारबार समझ जाते हैं । क्या आप जानते हैं कि हमने क्या देखा है ? कई लोग अपने स्वार्थ के लिये यह काम चलाते हैं, न कि हमारे हित के लिये । शायद चुनाव नजदीक आ रहे हैं । शायद सरकार से कोई अनुदान मिला है जिसे कहीं खर्च करना है ।

उन्होंने हमें जो कुछ सिखाया वह कोई काम का नहीं । अपना नाम लिख लिया तो क्या हुआ ? थोड़े शब्द पढ़ लिये तो क्या हुआ ?

हम तब ही साक्षर बनना चाहेंगे जब लिखने और पढ़ने के लिये हमें दूसरों पर निर्भर न रहना पड़े, हम सरल पुस्तकें अपने आप पढ़ लें, अपना हिसाब-किताब कर लें, अखबार पढ़ लें और समझ लें, चिट्ठियां पढ़ और लिख लें ।

और एक बात है-हमारे शिक्षक अपने आपको इतना बड़ा क्यों मानते हैं ? वे ऐसा बर्ताव करते है कि हम मानों अबूझ गंवार हों, या छोटे बच्चे हों ।

सोचने की कोशिश कीजिये ।

शिक्षक कुछ ऐसी बातें जानते हैं जो हम नहीं जानते । लेकिन हम भी ऐसा बहुत कुछ जानते हैं जो वे नहीं जानते ।

हम कोई खाली घड़ा नहीं हैं । हमारा अपना दिमाग है । सोच विचार कर सकते हैं । और आप माने या न मानें, जिन बातों से हमारा अपमान हो रहा हो वैसी बातें हमें कतई अच्छी नहीं लगतीं । जो लोग हमें पढ़ाना चाहते हैं उनको यह सोचना चाहिये । हमारे जीवन में तकलीफें है, दुख भी है, हम इसे बढ़ाना नहीं चाहते ।

पढ़ाई के केन्द्रों से हमें थोड़ी सी खुशी मिले, हम अपनी तकलीफें भूल जायें, तब तो हम वहां जरूर जाना चाहेंगे । हम छोटे बच्चे नहीं हैं । हमारे शिक्षक को यह बात ख्याल रखना चाहिये । हमारे साथ बड़ों जैसा बर्ताव करना चाहिये । हमें दोस्त मानना चाहिये, हमारे स्वाभिमान पर वार नहीं करना चाहिये । इसी तरह कुछ और भी महत्व की बातें हैं ।

हम गरीब हैं । हमें पेट भर खाना नहीं मिलता । हमारे पास कपड़े थोड़े हैं ।

हमारे सिर पर ढंग की छत नहीं है । और इसके ऊपर जब बाढ़ आती है तो सब कुछ डूब जाता है । जब अकाल पड़ता है तो सब कुछ सूख जाता है । हम साक्षर बनें तो क्या इन सब को झेल सकेंगे ?

साक्षरता से क्या हम अच्छा जीवन बिता सकेंगे ? पेट भर खाना खा सकेंगे ? हमारे बच्चे क्या कुछ कम रोयेंगे ? मां और बेटी को क्या फिर एक ही कपड़ा ओढ़कर नहीं जीना पड़ेगा ? क्या हमारे सिर पर छत होगी ?

पढ़ाई से यदि हमें ये सब मिल जाये तो तो हम पढ़ाई की मांग करेंगे । हम सुनते हैं कि गरीबों की मदद के लिये सरकार ने कई योजनायें बनाई हैं । क्या उनके बारे में हम जान पायेंगे ? हमारे लिये क्या सोचा जा रहा है यह भी क्या हम जान पायेंगे ?

क्या हम फसल बढ़ा सकेंगे ? आमदनी बढ़ा सकेंगे ? बैंक से सरलता से ऋण मिल जायेगा ? सहकारी संस्थाओं के फायदे मिलेंगे ? अच्छे बीज और खाद मिलेंगे ? जिस पानी की जरूरत है वह हमें मिल जायेगा ? मजदूरी की जो दर तय की गई है वही मिलेगी ? ये सारी बातें पढ़ाई की ही तो हैं। जीने के लिये पढ़ना है। आप कहते हैं कि इस नये कार्यक्रम में इन सबका ख्याल रखा गया है। हम आशा करते हैं कि आप सच ही कह रहे हैं। हमें मूर्ख नहीं बना रहे हैं।

क्या इस कार्यक्रम में आप हमें एकत्रित होकर मजबूत होना भी सिखायेंगे ? सीखने का मतलब हम सबको एक अंग करना भी है, इस बात को भी बतायेंगे क्या ? यदि ये सब हो तब तो हम सब आयेंगे, क्योंकि उससे हम जीना सीखेंगे। अपने जीवन को बेहतर बनाना सीखेंगे।

हम दुर्बल हैं, हम बीमार भी हैं, हमें पौष्टिक खाना भी नहीं मिलता। यह कार्यक्रम क्या हमें यह भी सिखायेगा कि हम बीमार होने से कैसे बचें ? शरीर को कैसे मजबूत बनायें ? यदि ये सारी बातें हों तब तो हम सब पढ़ने आयेंगे। हम सुनते हैं कि हमारी रक्षा और लाभ के लिये कानून बने हैं ? पर हम ये कानून भी नहीं जानते हैं। हमें जानबूझकर अन्धेरे में रखा गया है। क्या उन कानूनों के बारे में भी हम जान पायेंगे, जिन कानूनों ने महिलाओं की स्थिति बदल दी है। हम में से जो आदिवासी हैं, क्या वे उन कानूनों की मदद से शोषण करने वालों के साथ लड़ पायेंगे ? इन सभी प्रश्नों का हमें सीधा जवाब चाहिये।

उसके बाद हम ये तय करेंगे कि आपके कार्यक्रम में हमें शामिल होना है या नहीं। यदि हमें ऐसा लगे कि आप झूठे वायदों से हमें धोखा दे रहे हैं तो हम यहां से चले जायेंगे। केवल एक ही विनती करेंगे कि हमें अकेला छोड़ दीजिये।

(विकास के आयाम से साभार)

मात्र पढ़ाना

एक युवक ने इच्छा व्यक्त की कि वह समाज के लिये कुछ अच्छा काम करना चाहता है। मैंने पूछा–"तुम कौन सा काम अच्छी तरह कर सकोगे ?" उसने उत्तर दिया, "केवल पढ़ा सकता हूँ मैं।" मैंने फिर से पूछा, "आखिर तुम क्या सिखा सकते हो-धुनना, कातना, बुनना, क्या इनमें से कुछ सिखा सकोगे ?" "नहीं यह सब मैं नहीं सिखा सकूंगा।" वह बोला। मैंने फिर पूछा, "दर्जी का काम, रंगाई, बढ़ई का काम, खाना बनाना, चक्की पीसना, कोई और घरेलू काम-कुछ तो सिखा पाओगे ?" वह बेचारा खिसिया गया। बोला, "मैं बस पढ़ा सकता हूं, कुछ सिखा नहीं सकता।" प्यारे दोस्त, तुम कहते हो, तुम पढ़ाना चाहते हो, और मेरे हर प्रश्न का जवाब तुम न में देते जा रहे हो। शायद तुम बागवानी सिखा सको। "अब तो वह क्रोधित हो उठा। कहने लगा, "आप बार-बार एक ही से प्रश्न पूछ रहे हैं, मैं साहित्य पढ़ा सकता हूँ, कोई और चीज नहीं।" मैंने खुश होकर कहा, "अब जाकर मैं समझा, तुम लोगों को किताबें लिखना सिखा सकते हो, टैगोर, शैक्सपीयर की तरह। "मेरी इस बात पर क्रोध से वह युवक बड़बड़ाने लगा। मुझे हँसी आ गई। "तुम धैर्य सिखा सकते हो। अच्छा तुम इतिहास-भूगोल, पढ़ना-लिखना सिखा सकते हो। माना, वह भी निरर्थक नहीं। कभी जीवन में काम आते हैं, लेकिन उनसे जीवन की बुनियाद नहीं बनती।" सुनो, क्या तुम बुनाई सीखना चाहोगे।" "नहीं, अब मैं कुछ भी सीखना नहीं चाहता। परिश्रम मेरे बस की बात नहीं। कोई नया काम सीखकर मेहनत करना मैं नहीं चाहता।"

पढ़ने और लिखने की योग्यता को साक्षरता नहीं कहा जा सकता। अपने यथार्थ को पढ़ने (समझने) और लिखने (बदलने) की क्षमता का विकास ही सच्ची साक्षरता है।

('विकास के आयाम' से साभार)

(घोषणा-पत्र पृष्ठ 28 से)

12. चपरासी को आधा समय कॉलेज में और आधा समय दूकान में काम करना होगा। उन्हें एतराज नहीं होना चाहिए क्योंकि फर्म एक ही है।

13. हमारे खानदान के हर लड़के-लड़की की शिक्षा का सारा भार कॉलेज के स्टाफ पर रहेगा। उन्हें घर आकर मुफ्त में पढ़ाना होगा और परीक्षा के पहले पेपर बताने से लेकर बाद में नम्बर बढ़ाने तक का काम उन्हें करना होगा।

14. प्रोफेसरों का मुख्य कार्य पढ़ाना नहीं, बल्कि हमारे पास आकर हमारी चापलूसी तथा दूसरे साथियों की चुगली करना होगा। चुगली सुनने के लिए हम आधी रात को भी तैयार रहेंगे।

15. यदि हमारे परिवार में कभी कोई ऐसा नालायक लड़का हुआ, जो धन्धा न कर सके, तो उसे प्रोफेसर बनाना होगा।

हम होशोहवास में अपनी मर्जी से ये घोषणाएँ कर रहे हैं।

हम आशा करते हैं कि सब लोग हमारी मदद करेंगे, जिससे यह कॉलेज एक आदर्श संस्था बन सके।

इति। भूल-चूक लेनी-देनी।

('पगडण्डियों का जमाना' से साभार)

डारविन का विकासवाद

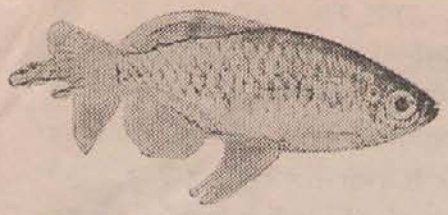

एक है तालाब। मान लिया कि इस तालाब में एक मछली ने 500 अंडे दिये हैं। अब अगर एक-एक अंडे से एक-एक बच्चा हुआ तो तालाब में मछली के कितने बच्चे पाये जाने चाहिए? 500 न? लेकिन उतने पाये जाते हैं? और जितने बच्चे पाये भी जाते हैं, क्या सबके सब बढ़कर मछली बन जाते हैं? इसमें से हर प्रश्न का उत्तर है: नहीं!

एक बागीचा है। बागीचे में अमरूद का एक ही पेड़ है। गिनकर देखा इसमें तीस अमरूद लगे हैं। मान लिया कि एक-एक अमरूद में सौ-सौ बीज हैं। कुल बीज हुए कितने? 3000 न! तो इन 3000 बीजों से अमरूद के 3000 पौधे उगने चाहिए। दो चार बरसों में बागीचों को अमरूद के पेड़ों से भर जाना चाहिए। लेकिन क्या सचमुच कभी वह ऐसा भरता है? जितने पौधे उगते हैं, सब के सब क्या बढ़कर पेड़ बन जाते है? फल देने लगते हैं? इनमें से भी हर प्रश्न का उत्तर है: नहीं!

डारविन द्वारा दिये गये एक उदाहरण को ही ले लीजिये।

हाथी औसत सौ साल तक जीता है। सौ बरसों में हाथी के एक जोड़े से औसत छः बच्चे होते हैं। मान लिया जाय कि 750 साल पहले हाथियों का एक ही जोड़ा था। सच पूछो तो थे बहुत जोड़े, लेकिन मान लिया कि एक ही जोड़ा था। अब हिसाब लगाओ कि हाथियों के इस एक जोड़े से इन 750 बरसों में कितने हाथियों को पैदा होना चाहिए था। एक करोड़ नब्बे लाख न? लेकिन इतने हाथी पैदा हुए भी हैं? जाहिर है: नहीं!

डारविन की भाषा में इस घटना को कहते हैं–अतिप्रजनन।

अंडे अनेक होते हैं, बीज अनेक होते हैं, बच्चे अनेक होते हैं। लेकिन सब के सब बचते नहीं, जीते नहीं, बड़े नहीं होते: अधिकतर मर जाते हैं। बचते हैं थोड़े से ही। बड़े भी थोड़े से ही होते हैं।

प्राणी के जन्म लेते ही उसकी लड़ाई शुरू हो जाती है: जीने के लिए लड़ाई, जीते रहने के लिए लड़ाई। अगर जीना है, तो खाने के लिए भोजन जुटाने का बंदोबस्त करना ही पड़ेगा, रोगों का सामना करना ही पड़ेगा, अपनी प्रकृति को चारों तरफ की आबहवा के अनुकूल बनाना ही पड़ेगा, अपने से शक्तिशाली शत्रुओं से अपनी रक्षा–आत्मरक्षा करनी ही पड़ेगी।

डारविन की भाषा में इस घटना का नाम है: जीवित रहने के लिए लड़ाई, या अस्तित्व के लिए संघर्ष।

इस लड़ाई में जो जीतता है, वही टिक पाता है; जो हारता है, वह मिट जाता है।

जीतता कौन है? कौन टिक पाता है?

जिसमें लड़ने की क्षमता अधिक होती है। एक उदाहरण ले लिया जाय।

एक जंगल है। जंगल में हिरनों का एक एक झुंड रहता है। एक बार इस जंगल में एक बाघ आया। कितने ही हिरन तो बाघ के पेट में समा गये। कुछ ही बच रहे। कौन बच रहे? बच रहे वे जिनकी निगाहें औरों से ज्यादा पैनी और तेज थीं, जो औरों की तुलना में ज्यादा तेज दौड़ लेते थे। इस तरह हम देखते हैं कि एक ही जाति के होने पर भी सब हिरन हूबहू एक ही तरह के नहीं होते। कोई-कोई औरों से ज़रा अलग तरह के होते हैं। उनमें औरों से एक मामूली अंतर होता है। उसी मामूली से अंतर के बूते पर उनमें से कई बच गये। इसी मामूली अंतर के अभाव में बाकी सारे मारे गये!

डारविन की भाषा में इस घटना का नाम है: प्रकारण, अर्थात् प्रकार-भेद पैदा होना।

जो बचे रहे, वे अब इस बात की कोशिश करेंगे कि अपने बच्चों को, अपने वंशवालों को भी, यह विशेष गुण देते जायें। अर्थात्, उनके बच्चे अपने मां-बाप और दादा-दादी की तरह अपनी निगाहें पैनी रखने की कोशिश करें। हो सकता है कि इस कोशिश में एक ही पीढ़ी के अंदर वे सफल न हो पायें, लेकिन कई पीढ़ियों तक कोशिश करते रहने पर धीरे-धीरे ये विशेष गुण उनके अंदर क्रमशः विकसित हो जायेंगे।

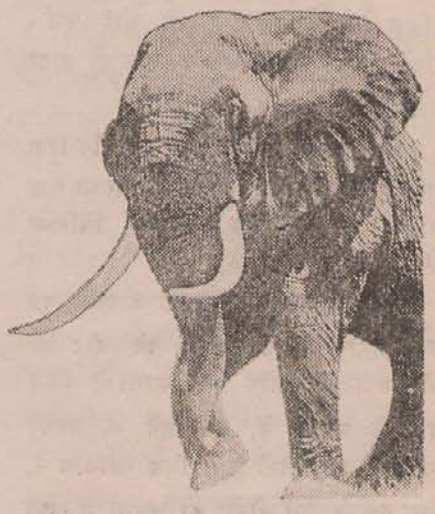

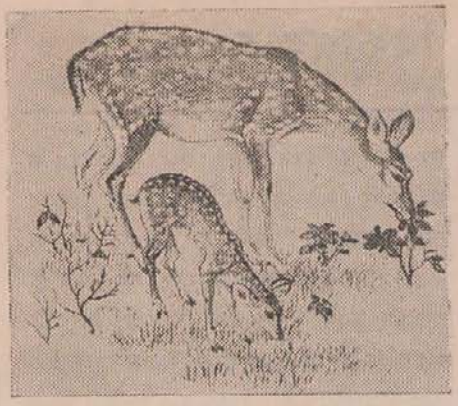

मान लो कि बरसात नहीं हुई है। मिट्टी पत्थर की तरह कड़ी पड़ गयी है। पेड़-पौधे सूखे जा रहे हैं, मुरझाये जा रहे हैं। बहुत गरमी है। लेकिन इस गरमी में भी ऐसे एकाध पेड़ हैं जो मुरझा तो गये हैं, लेकिन मरे नहीं हैं। पानी पाते ही वे फिर ताजे और हरे हो उठते हैं। ये पेड़ अगर बच गये तो किस बल-बूते पर बच गये? इसका इसका सीधा जवाब यही है कि और पेड़-पौधों की अपेक्षा ये ज्यादा गरमी बरदाश्त कर सकते हैं।

यह विशेषता, यह स्वतंत्रता, हरएक के अंदर, हर एक जीव के अंदर, प्रत्येक उद्भिद के अंदर, एक ही परिवार के अन्दर, बल्कि एक ही मां के पेट से पैदा हुए भाई-बहिनों के अन्दर भी, किसी-किसी में पैदा हो जाती है। कोई अधिक जाड़ा-पाला सह सकता है, तो कोई अधिक गरमी सह सकता है। कोई अधिक भूख सह सकता है तो कोई कम। रोग होने पर कोई अधिक कमजोर हो जाता है तो कोई कम।

ऐसी हालत में जोता कौन है? कौन टिक पाता है? वही जो औरों की बनिस्बत कुछ अधिक स्वतंत्र, कुछ अधिक विशिष्ट होता है।

जो बच जाता है, उबर जाता है, वह अपने शरीर के उन अंगों को और भी भी पूर्णता की ओर पुष्ट करता है जिन अंगों ने उबरने में, बचे रहने में, उसकी सहायता की होती है। जिस अभ्यास ने, जिस गुण ने, उसे औरों की तुलना में श्रेष्ठ बनाया, उस अभ्यास का, उस गुण का, व्यवहार वह और अधिक करने लगता है। और, जो अंग उसके किसी काम नहीं आये उन्हें त्याग देने की कोशिश करने लगता है। **जो अभ्यास उसके आगे बाधा बनकर खड़े हो गये थे, उन्हें उसने दूर करने की कोशिश शुरू कर दी। इसी तरह से धीरे-धीरे बहुत दिनों तक उसके उन्नत अंग और उसके अच्छे अभ्यास उसके वंशधरों में क्रमशः आप ही आप पनपने लगे और क्रम-क्रम से अत्यंत स्पष्ट रूप में पनप उठे। इस तरह उस जाति की एक नयी प्रजाति या शाखा पैदा हो जाती है।**

कुछेक उदाहरण लेकर इस मामले को कुछ और गहराई से, तौलकर, समझ लिया जाय।

किसी गृहस्थ के घर के पिछवाड़ेवाले पोखर के पालतू हंस को ले लीजिये। क्या वह हंस लम्बी-लम्बी उड़ानें भर सकता है? नहीं। डैने तो उसके भी हैं। लेकिन डैनों के बावजूद वह अच्छी तरह उड़ नहीं पाता और जंगली हंस हैं कि गजब की उड़ानें भरते हैं।

यह हुआ कैसे?

डारविन ने तौला।

क्या तौला?

उन्होंने पालतू और जंगली हंसों के डैनों की हड्डियों को तौला। उन्होंने देखा कि पालतू हंस के डैनों की हड्डी वजन में बहुत हल्की होती है। उन्होंने यह भी देखा कि पालतू हंस के पैरों की हड्डी जंगली हंस के पैरों की हड्डी से काफी भारी होती है।

यह क्यों हुआ?

यह इसलिए हुआ कि जंगली हंस उड़ता है ज्यादा, और पालतू हंस चलता है ज्यादा।

पालतू बनने से पहले सभी हंस जंगली होते थे; उड़ते-फिरते चारे की टोह लगाते रहते थे।

पालतू बनने के बाद उनके जीवन का सिलसिला ही बदल गया। उन्हें तालाब में तैरने और तैरकर चारे की जुगाड़ करने की कला सीखनी पड़ी। क्या सभी जंगली हंस शुरू से अच्छी तरह तैरने लगे? न! ऐसी बात नहीं हुई। उनमें से जिनके पैरों में कुछ ज्यादा जोर था, बेहतर तैर सके, अपने लिए चारे का बंदोबस्त कर सके, जी गये, बड़े हुए, उनके बाल बच्चे पैदा हुए। धीरे-धीरे तैरने की यह ताकत पीढ़ी-दर-पीढ़ी और भी हंसों में फैलती गयी। क्रमशः जंगली हंसों की जाति दो अलग-अलग शाखाओं में बंट गयी। पालतू हंसों की अलग जाति बन गयी और जंगली हंसों की अलग। अवस्थाओं के हेरफेर में पड़कर पालतू हंसों के शरीर का गठन भी एकदम बदल गया।

या, मछली की मिसाल ले लो।

जिन जीवों के रीढ़ें होती हैं उन्हें समेरुक या रीढ़दार प्राणी कहते हैं। इस धरती पर सबसे पहले जिस पूरे-पूरे समेरुक या रीढ़दार प्राणी ने जन्म लिया वह थी—मछली।

करोड़ों-करोड़ों साल पहले की बात है। एक बार ऐसी अवस्था आ गयी कि पानी के अन्दर रह पाना मछलियों के लिए असम्भव हो गया। वे दिन भी इस धरती पर भयंकर सूखे के दिन थे। सूखी धरती पर निकले बिना जान बचाना मुश्किल था। कोई और चारा था ही नहीं। तो क्या सभी मछलियां सूखी धरती पर आ सकीं? नहीं, यह सबके बस का नहीं था। हम अपनी आंखों से देख

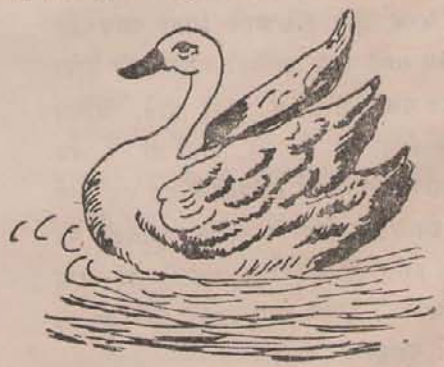

सकते हैं कि कवई मछली बड़े मजे में टहलती हुई सूखी ज़मीन पर चली आती है और हिलसा मछली सूखी ज़मीन पर रखे जाते ही बेबसी में फड़फड़ाने लगती है।

खैर जो भी हो। किसी-किसी जाति की मछलियों ने सूखी धरती पर भी जीवित रहने की कला सीख ली। नदी-समुद्र के फिर से भर जाने पर भी वे पानी में नहीं लौटीं। वे धरती पर ही रह गयीं। मिसाल के लिए मेंढकों की जाति का नाम लिया जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि एक विशेष जाति के जलचर प्राणी ही थलचर मेंढक बन बैठे। बाहर से, सिर्फ ऊपर-ऊपर से, इस विषय को समझ पाने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन उनके शरीर के चमड़े को उधारकर देखा जाय तो हम यही पायेंगे कि दोनों जातियों के शरीर की अंदरूनी बनावट में बेहद एकरूपता है। मछली के छबों और मेंढक की बेंगचियों (मछली के आकार के उनके बच्चों) को पास-पास रखकर देखा जाय तो—पहले से न मालूम होने पर कहना कठिन हो जायगा कि इनमें से मछली के बच्चे कौन से हैं और मेंढक से कौन से। मेंढक उभयचर, यानी पानी तथा सूखी ज़मीन दोनों जगह रह सकनेवाला, प्राणी है। अपने बालपन यानी बेंगची-जीवन में तो वह पानी में रहता है यानी जलचर होता है, और दुम के झड़ जाने के बाद, मेंढक बनते ही, थलचर बनकर सूखे में रहने लगता है। इससे यह समझा जा सकता है कि मेंढक पहले पूरा जलचर था। वह पानी में रहता था और जलचरों की ही एक शाखा की अवस्था में हेरफेर आने पर उभयचर मेंढक बन गया।

अब जिराफ का उदाहरण लेकर इस विषय को समझा जाय।

किसी जंगल में ज़िराफों का एक झुंड रहता था। ध्यान रहे कि आज-कल के ज़िराफों के जो पुरखे थे, उनकी गरदनें इतनी लम्बी नहीं थीं। उस जंगल में जितने भी पेड़-पौधे थे, सब ऊंचे-ऊंचे थे। सभी ज़िराफों की गरदनें एक-समान नहीं थीं। सो जिनकी गरदनें कुछ ज्यादा लम्बी थीं, वे ही ऊंची डालों तक अपना मुंह पहुंचा पाते थे। वे ही फल पत्तियां खाकर अपने जीवन की रक्षा कर सके और अपना वंश चला सके। लेकिन छोटी गरदनों वाले न तो आप बचे रह सकते थे और न अपने वंश को ही बढ़ा सकते थे। लम्बी गरदनवालों के वंश बढ़ते रहे और वंश-परम्परा में पूरी जिराफ जाति ही लम्बी गरदन वाली हो गयी।

प्रकृति में यह जो सिलसिले चल रहे हैं—सभी जीवों की अपना-अपना वंश बढ़ाने की कोशिशें, उनके अन्दर जीवन की परम्परा को कायम रखने की लड़ाइयां, अपने विशेष गुणों के कारण इन लड़ाइयों में किन्हीं-किन्हीं की जीत, अपने बाल-बच्चों को उन विशेष गुणों को सिखा देने की कोशिशों आदि के सिलसिले- इन सभी सिलसिलों और घटनाओं को **डारविन ने एक खास नाम दिया**। यह नाम है—

प्राकृतिक निर्वाचन !

भला सीधी-सादी भाषा में निर्वाचन का क्या अर्थ होता है? निर्वाचन का मतलब होता है—चुनाव। दस-पांच तरह की चीजों में जो सबसे अच्छी चीज है उसे चुन लेने को ही कहते हैं निर्वाचन। चुन लेने का यह जो सिलसिला है, वह प्रकृति के अन्दर भी जारी रहता है। भला ठीक है, उसमें लड़ने की ताकत ज्यादा है, वह जीने की लड़ाई में टिक सकता है, उबर सकता है, जीता रह सकता है, उसका वंश कायम रह सकता है—बस, इसलिए वह चुन लिया जाता है।

यही है डारविन का सिद्धान्त। ऊपर हमने घुमा-फिराकर, तरह-तरह के उदाहरण देकर इसी सिद्धान्त को समझाने की कोशिश की है। अब थोड़े में, एक ही सांस में, इस पूरे सिद्धान्त को कह डालने की कोशिश की जाय।

प्रकृति के अन्दर हम देखते हैं कि सभी प्राणी क्रम परम्परा से अपनी संतानें पैदा करते हैं। लेकिन जितने पैदा होते हैं, उतने जीते नहीं हैं। ज्यादातर ऊंची अवस्था में पहुंचने से पहले ही मौत के शिकार हो जाते हैं।

जीने के लिए उनके बीच भीषण लड़ाई छिड़ती है। खाने के लिए अपना भोज्य-पदार्थ पाने की लड़ाई छिड़ती है, आबहवा के साथ लड़ाई चलती है, अपनी आत्म-रक्षा की लड़ाई चलती है।

इस लड़ाई में वही जीतता है, जिसमें कोई विशेषता औरों से बढ़-चढ़कर होती है। यह विशेषता कितनी भी मामूली क्यों न हो, अगर लड़ाई में जीतने में उसकी मदद करती है, तो वह इसी बूते पर अपनी जीवन रक्षा कर लेता है, अपना वंश बढ़ाने लगता है।

(शेष अंतिम पृष्ठ पर)

लघु कथाएं

राजेश उत्साही की दो लघु कथाएं

विकल्प

–डाक्टर साहब !

–हूँ !

-क्या आपको ऐसा कोई अधिकार नहीं है ?

–कैसा ? डाक्टर ने इंजेक्शन लगाते हुए पूछा।

–कि आप मुझे दिसम्बर के पहले मार डालें ।

डाक्टर ने अचकचाकर रामलाल की ओर देखा। वह रोज-रोज ऐसे उल्टे-सीधे प्रश्नों से डाक्टर को उलझन में डाल देता है। आजकल उसका मानसिक संतुलन ठीक नहीं है। पर आज दिसम्बर शब्द जोड़कर रामलाल ने प्रश्न को रहस्य पूर्ण बना दिया।

झल्ला कर डाक्टर ने पूछा—

–आखिर रामलाल तुम जीना क्यों नहीं चाहते ?

–जीना। रामलाल ने एक फीकी हँसी-हँसते हुए कहा—

–डाक्टर साहब, कैंसर का रोगी भी कभी बचता है। आठ महीने हो गये, यहाँ पड़े-पड़े। घर किस तरह चलता होगा ? भगवान ही जाने। बड़ा लड़का एम. ए. पास करके मारा-मारा घूम रहा है, आप जानते हैं ?

–जानता हूँ।

–दो लड़कियों की शादी होना है।

–यह भी जानता हूँ। डाक्टर ने कहा।

-पर क्या दिसम्बर के पहले मर जाने से तुम्हारे लड़के की नौकरी लग जायेगी या लड़कियों की शादी हो जायेगी ? डाक्टर ने पूछा।

–हाँ डाक्टर।

डाक्टर चौंक गया। उसे स्वीकारात्मक उत्तर की आशा नहीं थी। वह उसके अगले वाक्य का इंतजार करने लगा।

–डाक्टर साहब मुझे दिसम्बर में रिटायर होना है। अगर दिसम्बर के पहले मर गया तो मेरे बदले, मेरे लड़के को नौकरी · · · · · !

राहत

उस साल गजब का सूखा पड़ा था। जीविका के साधन लगभग समाप्त हो गये थे। लोग काम की तलाश में गाँव छोड़कर बाहर जाने की तैयारी करने लगे थे।

तभी शासन ने गाँव-गाँव में राहत कार्य शुरू करवाये। ताकि कुछ निर्माण भी हो सके और लोगों को काम मिले। राहत कार्यों के अंतर्गत गाँवों को कच्ची सड़कों द्वारा पक्की सड़कों से जोड़ना, बाँध बधँवाना, नहर खुदवाना आदि प्रमुख थे।

बरसात के बाद जब मैं दुबारा गाँव पहुँचा तो कच्ची सड़कों का दूर-दूर तक पता नहीं था। उनकी जगह वही पुरानी ऊबड़-खाबड़ पगडण्डियों ने ले ली थी।

गाँव के एक आदमी से पूछा। जवाब मिला-बाबूजी ! आखिर था तो राहत कार्य ही। कुछ दिन लोगों को काम मिला। कुछ दिन रास्ता चलने वालों को सहूलियत। फिर आप ही सोचिये अभी पक्की सड़क बन जाती तो अगली बार कौन सा काम होता।

चौराहा

रवीन्द्र कंचन,
रायगढ़

चार अनपढ़ देहाती चौराहे के पास खड़े विचार कर रहे थे "किस राह पर चला जाए ?"

एक ने कहा, "इस राह से ।"

दूसरे ने कहा, "इससे ।"

तीसरे ने कहा, "इससे ।"

और चौथे ने कहा, "पहले एक राह पर चलकर देख लेते हैं । बीच में कोई मिल गया तो पूछ लेंगे । रास्ता गलत होने पर यहीं लौटकर दूसरा रास्ता देखेंगे ।"

तीनों ने उसकी बात मान ली । कुछ दूर जाने पर उन्हें पता चला रास्ता गलत है । वे पुन: उसी जगह लौट आए और दूसरे रास्ते पर चल पड़े । अंतत: उन्होंने अपनी मंजिल पा ली ।

उसी चौराहे पर चार विद्वान खड़े थे । एक का कहना था, "हमें पूर्व की ओर चलना चाहिए क्योंकि सूर्य इधर से ही निलकता है ।"

दूसरे का कहना था, "सूर्य निकलता तो पूर्व से है, किंतु जाता पश्चिम की ओर ही है । अत: हमें पश्चिम की ओर चलना चाहिए ।"

तीसरे ने कहा, "पूर्व-पश्चिम में कुछ नहीं । दिशाओं में श्रेष्ठ उत्तर दिशा है, क्योंकि इधर ही ध्रुव तारा दिखाई देता है जो भटके हुए राही का पथ प्रदर्शक होता है ।"

चौथे ने कहा, "दिशाओं का झंझट ठीक नहीं । मैं जिस राह पर कहूँ उस पर चला जाए ।"

शेष तीनों ने कहा, "ऐसा नहीं हो सकता । हम बिना आधार के एक कदम भी आगे बढ़ा नहीं सकते ।"

चारों अभी भी उसी चौराहे पर खड़े अपनी-अपनी बात पर अड़े हैं । वे अभी तक एक मत नहीं हो सके हैं । और अपना अपना तर्क पेश करते हुए लड़-झगड़ रहे हैं । ★

हाथ की पूजा

प्रमोद कुमार

गांव में कोई ऐसा घर नहीं था, जहाँ उसने बीस रुपये के लिए हाथ नहीं फैलाया था, पर हर जगह उसे निराशा ही हाथ लगी । गरीब के पास निराशा के सिवा और होता क्या है ! अगर कुछ होता है तो कर्ज का बोझ, वह इसी को लेकर जी रहा था । आज महाबीर बाबा की पूजा थी । गांव के हर घर में यह पूजा हो रही थी । आटे के लड्डू बांटे जा रहे थे, पर उसके पास अपना पेट भरने के लिए तो आटा था ही नहीं, भगवान को कहां से खिलाता । उदासी और चिंता में डूबा वह गांव के बाहर आ गया, जहाँ भगवान का मंदिर था । पूजारी बाहर बैठा भांग घोंट रहा था ।

"क्यों भाई, आज पूजा के दिन तुम इधर टहल रहे हो ।"

"पूजारी जी, मैं महाबीर बाबा की पूजा नहीं करूंगा ।"

"ये तो अनर्थ है, भगवान इससे रुष्ट होगा ।"

"बाबा, जो भगवान ने मुझे दिया ही नहीं, उसे मैं कहाँ से दूंगा । अगर उसने मुझे दिया होता तो मैं भी साव जी तरह ठाठ से पूजा करता ।" वह गंभीर होकर बोला ।

"नहीं बेटे ये, तेरे भाग्य की बात है । इन हाथों से जैसे तुम कार्य करोगे, फल वैसा ही मिलेगा । भगवान को दोष मत दो ।"

"तो मैं हाथ की ही पूजा करूंगा, भगवान की नहीं ।" और उठ कर चल दिया ।

कुछ देर बाद वह कुदाल लेकर खेतों की ओर जा रहा था । ★

ज्ञान की सीमा

सुरेन्द्र श्रीवास्तव

शिष्य गुरु के पास ही रहता था और ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील था । एक दिन उसने गुरु से प्रश्न किया, "प्रभो, क्या आपको दुनिया का समस्त ज्ञान है ?"

"नहीं, वत्स, ज्ञान की कोई सीमा नहीं है । यह तो अपार है । किसी एक के लिए विश्व का समस्त ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं ।" गुरुवर ने समझाया ।

शिष्य जिद कर बैठा, "गुरुवर, मैं दुनिया का समस्त ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ । आप मुझे विश्व के समस्त ज्ञान-कोश दिखला दीजिए ।"

गुरुजी ने उसे समझाने की कोशिश की, किंतु वह जिद पर अड़ गया । इस पर गुरुदेव उसे ले संसार के ज्ञान-ग्रंथ दिखलाने को चल दिये ।

बरस पर बरस बीत गये, किंतु ज्ञान-कोशों की सीमा ही नहीं दृष्टि गोचर हुई । लगता अभी भी अनगिनत ज्ञान-ग्रंथ बाकी ही रह गये हैं । दोनों अपने काम में लगे रहे ।

गुरुदेव समय के साथ वृद्ध हो चले और एक दिन वह मृत्यु शैया पर जा लेटे । धुन के पक्के शिष्य ने अपने प्रकाश-स्तंभ का अंत नजदीक देख दुख भरे शब्दों में कहा, "भगवन् आप चले जायेंगे तो मुझे विश्व के इन ज्ञानग्रंथों का परिचय कौन देगा ?"

अब गुरुजी ने रहस्य बतलाया, "वत्स तुमने अब तक जो ज्ञान प्राप्त किया है, वह तो कुछ भी नहीं है । ग्रन्थों से करोड़ों गुना ज्ञान तो इस संसार में यों ही बिखरा पड़ा

(शेष पृष्ठ 36 पर)

पौधों को शुरुआत कैसे हुई ?

विज्ञान की जानकारी के अनुसार एक ऐसा समय भी था जब पृथ्वी पर बिल्कुल पेड़ पौधे नहीं थे । तब लाखों साल पहले प्रोटोप्लाज्म के बारीक कण पृथ्वी पर पैदा हुए। प्रोटोप्लाज्म उस जीवित पदार्थ को कहते हैं जो पेड़ पौधों और जीव जन्तुओं दोनों में ही पाया जाता है। प्रोटोप्लाज्म के इन प्रारंभिक कणों से ही पेड़-पौधों और जीव जन्तुओं की शुरुआत हुई।

प्रोटोप्लाज्म के जिन कणों से पेड़-पौधे विकसित हुए उन पर मोटी परतें (Thick walls) चढ़ आई और वे एक ही स्थान पर रहने के लिए बस गए। इनमें एक हरे रंग का खास पदार्थ भी विकसित हुआ जिसको क्लोरोफिल कहते हैं । यही पदार्थ पेड़ पौधों को हवा पानी और सूर्य की रोशनी से भोजन बनाने की क्षमता देता है।

सबसे शुरू के हरे पौधों में केवल एक ही कोशिका थी पर उसके बाद कोशिकाओं के समूह पनपने लगे। सूखने से बचने के लिए इन कोशिकाओं को पानी में रहना पड़ता। आज भी इन प्रारंभिक पौधों की सन्तानें पृथ्वी पर पाई जाती हैं। हालांकि उनमें काफी बदलाव आ चुके है। इन पौधों को हम एल्गेई (algae) शैवाल कहते हैं।

पौधों की एक और नस्ल ऐसी विकसित हुई जो बगैर क्लोरोफिल के अपना भोजन तैयार करती थी। इन बगैर हरियाली वाले पौधों को फफूंद कहते हैं।

आजकल पृथ्वी पर पाये जाने वाले अधिकतर पेड़ पौधे (algae) शैवाल से ही विकसित हुए हैं। इनमें से कुछ समुद्र से बाहर निकल आए और जड़ें विकसित करलीं, जिससे मिट्टी में एक स्थान पर जम गए। इनमें छोटी पत्तियां भी निकल आईं, जिन पर सूखने से बचने के लिए एक बाहरी खोल भी था ये पेड़ पौधों में आगे चलकर काई [Moss] और पर्णांग [Ferhs] बने।

शुरू में सभी पौधों का प्रजनन कोशिका के सरल बँटवारे द्वारा होता था, या फिर बीजाणुओं [Spore] की मदद से होता था। आप जानना चाहेंगे कि बीजाणु क्या चीज है ? बीजाणु बहुत ही छोटे धूल के कण जैसी छोटी कोशिकाएं होती हैं जो बीज से मिलती-जुलती हैं । परन्तु इनमें बीज की तरह अपना भोजन का भण्डार नहीं होता। जैसे-जैसे समय बीतता गया इनमें से कुछ पौधों में फूल विकसित हुए जिनमें असली बीज पैदा हुए। उसके बाद दो अलग प्रकार के बीज वाले पौधे बने प्रथम ढके बीज वाले और दूसरे खुले बीज वाले। इन दोनों नस्लों में से भी समय के साथ-साथ बहुत से नए किस्म के पौधे निकले।

जनविज्ञान यात्रा

स्वास्थ्य एक ऐसा विषय है जिसके बल पर हमारी जिंदगी और भविष्य की दिशा तय होती है। हर व्यक्ति चाहता है कि वह स्वस्थ्य और खुशहाल जिंदगी का हकदार बने। एक परिवार के सदस्यों से लेकर दुनिया की संपूर्ण मानवता की भी यही चाहत है। मानव समाज की भी यही सचाई है। "जान है तो जहान है।" स्वस्थ्य रहना हमारा बुनियादी हक है। इसके लिए हमें कैसा भी प्रयास क्यों न करना पड़े, जिंदा रहने और सुखी जीवन को पाने के लिए इतिहास में मनुष्य ने हर समय संघर्ष का रास्ता चुना है।

इतिहास बताता है कि हमारे देश से लेकर दुनिया के किसी भी देश के समाज में प्राकृतिक प्रकोपों को छोड़कर मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक वहां की सामाजिक और आर्थिक दशाएँ रही हैं। जिसमें शोषक और शोषित के रिश्ते की मौजूदगी ने स्वास्थ्य को प्रभावित किया है और गरीबी और अमीरी की खाई से बीमारी जैसे भयानक राक्षस का जन्म हुआ है।

बीमार कौन है और क्यों है ? इसी सवाल को समझने के लिए एकलव्य, देवास ने देवास जिले में एक जनविज्ञान यात्रा का आयोजन मई माह में किया था।

यात्रा में पोस्टर प्रदर्शनी के माध्यम से पिछले दशकों में बीमारियों के भयंकर प्रकोपों से हुई मौतों के आंकड़े, शिशु मृत्यु दर, कुपोषण, दवा उत्पादन एवं प्रचार, जीवनदायी दवाएं, साफ-सुथरा पर्यावरण, बहुराष्ट्रीय दवा कम्पनियों की देश में स्थिति, देश की स्वास्थ्य सेवाएं, समाज में फैली भयानक बीमारियों के कारण और परिणाम आदि बिन्दुओं पर सिलसिलेवार ढंग से विस्तृत जानकारी देने की कोशिश की है।

'सामुदायिक स्वास्थ्य एवं दवाईयाँ' विषय पर आयोजित इस जनविज्ञान यात्रा की विस्तृत रपट अगले अंक में पढ़ें।

ज्ञान की सीमा (शेष पृष्ठ 35 का)

है। तुम्हें एक सत्य बतलाऊँ अपनी जिद की वजह से तुम उतना भी नहीं सीख सके, जितना कि मैं तुम्हें यही सिखला सकता था। बेटा, व्यवहारिक स्तर पर प्राप्त ज्ञान ही सर्वोपरि है। ज्ञान अपार है, ज्ञान की कोई सीमा नही है।"

यह कहकर गुरुजी चिर निद्रा में लीन हो गये। ★

जरा सिर तो खुजलाइये

पिछले अंक की तरह इस अंक में भी जो पहेलियां दी जा रही हैं उन के सबसे संतोषजनक उत्तर भेजने पर पन्द्रह रुपये नकद इनाम में दिये जायेंगे। देखें कितने पाठक हिम्मत करते हैं !

उत्तर इस पते पर भेजिये :

संपादक,
होशंगाबाद विज्ञान पत्रिका
एकलव्य नेहरू कालोनी, हरदा (म.प्र.)

हां, उत्तरों के साथ अपना नाम व पता लिखना न भूलें।

दूसरी शादी :

बुद्ध, इस्लाम और हिन्दू धर्म। बताइये इनमें से किस में एक आदमी अपनी विधवा की बहन के साथ शादी कर सकता है ?

ऐसा कैसे हो सकता है ?

एक कोई श्री पोपट लाल शास्त्री अपने बेटे अरूण के साथ मोटर में सफर कर रहे थे। मोटर की टक्कर एक ट्रक से हो गई। बाप की मृत्यु घटनास्थल पर ही हो गई और बेटा अरूण बुरी तरह घायल अवस्था में अस्पताल ले जाया गया। जब इसे हालत में उसको डाक्टर के पास ले जाया गया तो डाक्टर ने उसे देखते ही घबराकर कहा "अरे यह तो मेरा बेटा है ?"

क्या आप समझा सकते हैं कि यह कैसे हो सकता है ?

सवाल न्याय का।

राम, श्याम और मोहन रेगिस्तान में लम्बा सफर तै करने वाले थे। राम की मोहन से दुश्मनी थी और उसने मोहन की जान लेने की ठानी। इस उद्देश्य से उसने मोहन के पीपे में जहर डाल दिया।

इधर श्याम भी मोहन को खत्म करने की तरकीब लगा रहा था। उसने मोहन के पीपे में छेद कर दिया।

तीनों अपने-अपने रास्तों पर निकल गये। इसके पहले कि मोहन पानी पीता उसके पीपे का सारा पानी छेद से बह गया। अंत में मोहन प्यास से मर गया।

अब सवाल यह है कि मोहन का असल हत्यारा कौन है. राम या श्याम ? मोहन मरा तो प्यास से मगर उस के पीपे का पानी तो पहले से ही जहरीला था। और अगर वह उस पानी को पीता भी तो मरता–शायद उस हालत में वह और जल्दी मर जाता।

तो बताइये राम को मोहन की मौत के लिए जिम्मेदार मानते हैं ?

सच्चे और झूठों का टापू :

एक टापू है जिस पर दो कबीलों के लोग रहते हैं। एक कबीला ऐसा है जिसके सदस्य हमेशा सच बोलते हैं और दूसरा ऐसा है जिसके सदस्य हमेशा झूठ बोलते हैं। दिक्कत बस इतनी है कि किसी को देखकर पहचाना नहीं जा सकता कि वह पहले कबीले का है या दूसरे का।

एक बार की बात है कि एक बाहर का मुसाफिर उस टापू पर पहुँचा। एक पेड़ के नीचे टापू के तीन बाशिंदे खड़े थे।

मुसाफिर ने पहले आदमी से पूछा तुम कौन हो, सच्चे या झूठे ?

पहले आदमी ने उत्तर कुछ ऐसे बुद-बुदा कर दिया कि मुसाफिर समझ नहीं पाया। और उसने दूसरे आदमी से पूछा,

"इसने क्या कहा ?"

दूसरा बोला, इसने कहा कि यह झूठा है।

तभी तीसरा आदमी दूसरे की बात सुन कर मुसाफिर से बोला,

"इसकी बात का विश्वास मत करिये, यह झूठ बोल रहा है।"

अब आप ही बताइये इन बातों के आधार पर क्या आप पहचान सकते हैं कि दूसरे और तीसरे आदमी में से कौन झूठा था और कौन सच्चा ?

विकासवाद (पृष्ठ 33 से)

इस विशेषता को अपने बाल-बच्चों को भी विरासत में देता है।

वंश की परम्परा बढ़ाने के साथ-साथ यह विशेषता और भी स्पष्ट होती है, जाती उसी वंश के अनेकों वंशधरों के अन्दर बढ़ती जाती है। और आखिरकार उस वंश को एक नयी धारा मिल जाती है। इस तरह एक नयी शाखा या प्रजाति की सृष्टि होती है।

डारविन के सिद्धान्त में नयी बात क्या है ? नयी बात है, परिवर्तन। डारविन ने इस परिवर्तन की एक व्याख्या भी की है। यह परिवर्तन है, प्राकृतिक निर्वाचन। धर्म–शास्त्र इस परिवर्तन को नहीं मानते। धर्म शास्त्रों का कहना है कि भगवान ने एक ही दिन में सब-कुछ तैयार कर दिया था। इसके बदले डारविन ने सत्य की स्थापना की– अकाट्य तथ्यों के प्रमाण देकर। वह जीव-विज्ञान की दुनिया में एक नया युग ले आये। उन्होंने नये-नये आविष्कारों का रास्ता खोल दिया, और दुनिया के अनगिनत वैज्ञानिकों को नये-नये तथ्यों को एकत्रित करने के लिए प्रेरणा दी।

बाल जीवन माला : डारविन पीपुल्स पब्लिशिंग हाऊस से साभार।

डाक पंजीयन क्रमांक J-2 MP/33/14

मध्यप्रदेश में सिंचाई सुविधाओं का विस्तार

- सातवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्रदेश शासन द्वारा निर्माणाधीन सिंचाई योजनाओं को पूरा कर पर विशेष बल।

- सिंचाई क्षमता में वृद्धि के लिए आगमी पाँच वर्षों में नौ बहुउद्देशीय परियोजनाएं, सत्रह बड़ी योजनें चवालीस मध्यम योजनाएं और एक हजार छः सौ छिहत्तर छोटीं सिंचाई योजनाओं पर काम करने निर्णय। अगले पाँच वर्षों में प्रदेश की सिंचाई क्षमता में सात लाख तीस हजार हेक्टेयर वृद्धि का लक्ष्य

- निर्मित सिंचाई क्षमता के पूरे उपयोग के लिए सिंचाई योजनाओं के कमाण्ड क्षेत्र में सिंचाई नालियों अ जल विकास नालियों के निर्माण की योजना।

- सिंचाई का सही उपयोग कर उत्पादन बढ़ाने का प्रशिक्षण देने के लिए भोपाल में जल एवं भू-प्रबन्ध स्थापना।

- प्रदेश में कुओं द्वारा सिंचाई को प्रोत्साहित करने के लिए हरिजनों आदिवासियों और दो हेक्टेयर तक खातेदार छोटे किसानों के लिए सिंचाई कुआँ बीमा योजना शुरु करने का निश्चय। इस योजना के त ऐसे किसानों को लागत वापस मिल सकेगी जिनके कुएं असफल हो जाते हैं।

किसानों की खुशहाली के लिए कटिबद्ध सरकार।

मु. प्र. स 880014/86

सहयोग राशि : 1.00 रुपया डाक खर्च अतिरिक्त

एकलव्य E—1/208 अरेरा कालोनी भोपाल द्वारा प्रकाशित एवं अभिषेक प्रिन्टर्स, भोपाल द्वारा मुद्रित
सम्पादकीय सम्पर्क : एकलव्य नेहरू कालोनी, हरदा (म. प्र.)